गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष: 41, अंक: 6, नवम्बर – दिसम्बर, 2018

झूठ है यह !
फिर उठेगा वह
और सूरज की मिलेगी रोशनी
सितारों की जगमगाहट मिलेगी !
कफन में लिपटे हुए सौन्दर्य को
फिर किरन की नरम आहट मिलेगी !

फिर उठेगा वह,
और बिखरे हुए सारे स्वर समेट
पोंछ उनसे खून,
फिर बुनेगा नई कविता का वितान
नए मनु के नए युग का जगमगाता गान !

–धर्मवीर भारती

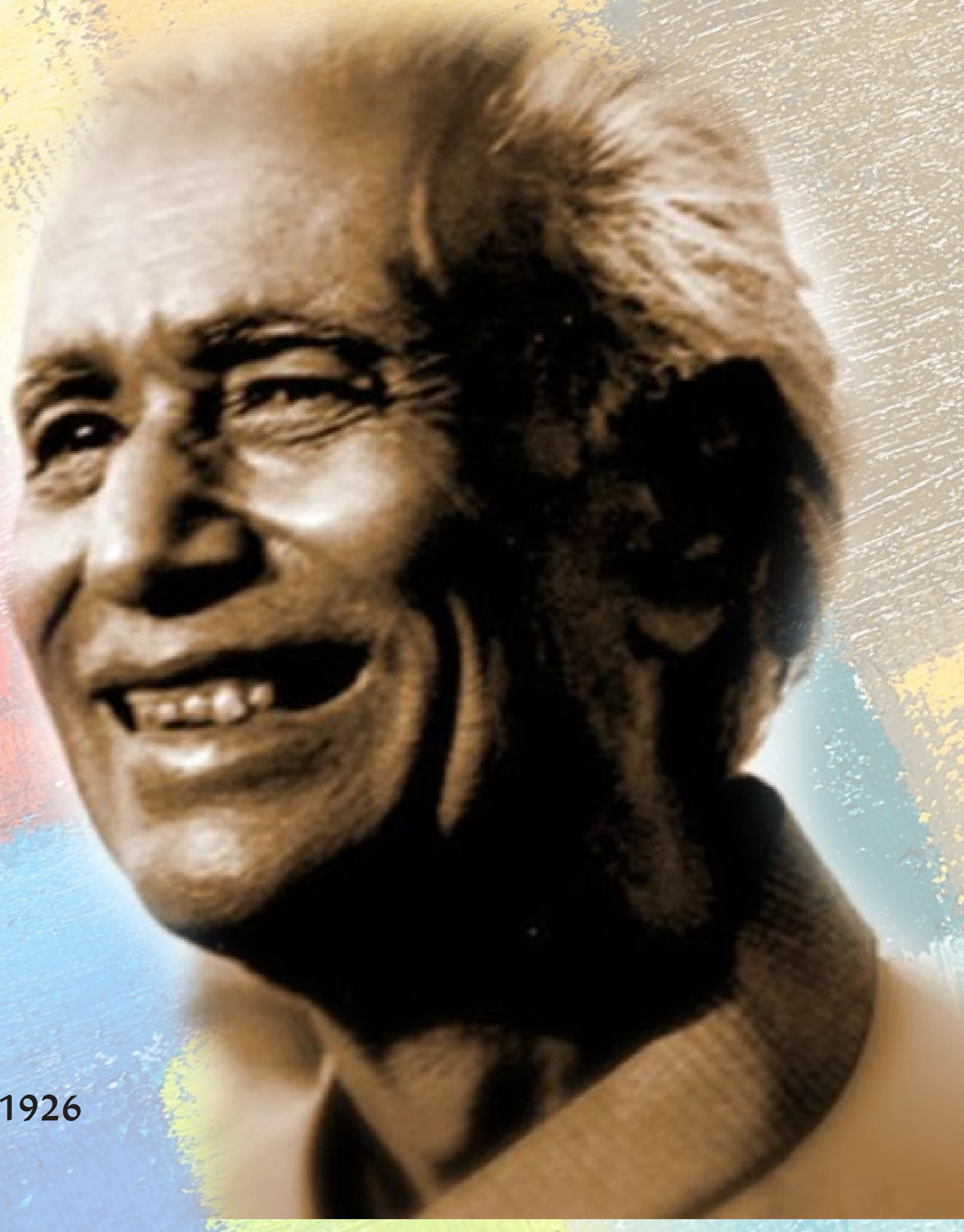

जन्मदिवस 25 दिसम्बर 1926

गगनांचल

नवंबर-दिसंबर, 2018

प्रकाशक

रीवा गांगुली दास

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली

संपादक

डॉ. हरीश नवल

सहायक संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

ISSN : 0971-1430

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002

ई-मेल: **spdawards.iccr@gov.in**

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों और फोटोग्राफ्स की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

शुल्क दर

वार्षिक	:		₹ 500
		यू.एस.	$ 100
त्रैवार्षिक	:		₹ 1200
		यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : इमेज इंडिया, नई दिल्ली-110002
9953906256

अनुक्रम

विमर्श

भारतवंशी रोमा तथा यायावर संस्कृति
प्रो. (डॉ.) श्याम सिंह शशि 5

आदिकालीन संत साहित्य में 'अहिंसा'
डॉ. मीरा निचळे 8

आधुनिक हिंदी कविता में भारतीय अस्मिता
डॉ. प्रीति प्रकाश प्रजापति 11

हिंदी के उद्‌भव में पुर्तगाली भाषा और संस्कृति का प्रभाव
शिव कुमार सिंह 15

विश्वव्यापी लोकप्रिय श्रीरामकथा
ललित शर्मा 18

स्मरण

स्मृतिशेष साहित्यकार मनु शर्मा
प्रो. राममोहन पाठक 21

हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद
डॉ. विभा खरे 24

समालाप

साक्षात् कृष्णा सोबती
महावीर अग्रवाल 27

डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे से बातचीत
आशीष कंधवे 31

बड़ा परदा

भारत के पहले सिने सुपर स्टार-राजेश खन्ना
पंकज शुक्ला 38

दस्तावेज

चौरासी के दंगे के तुरंत बाद डायरी के पृष्ठ
जगमोहन सिंह खन्ना 43

संस्मरण

मैं जब शायर बना
डा. कुंअर बेचैन 45

यात्रा वृतांत

लेह से आगे
डॉ. ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' 48

कथाक्रम

चार्वाक
श्याम सखा श्याम 54

लापता
जसविंदर शर्मा 58

परितृप्ति का जीवन दर्शन
सत्येंद्र चतुर्वेदी 62

लघुकथा

जनहित
संदीप तोमर 64

नींव के पत्थर
आशा शर्मा 65

टीआरपी
मृदुला श्रीवास्तव 65

रेप केस
महावीर राजी 66

पागल
पुष्पेश कुमार पुष्प 66

काव्यनिधि

दो गजलें
डॉ. पुष्पलता 67

मैंने तो बस इतना जाना
कुसुमवीर 67

दो कविताएं
कुलभूषण हस्ती 68

मां की याद
डॉ. सांत्वना श्रीकांत 69

मैं पिता हो जाना चाहता हूं
संजय स्वतंत्र 70

निशांत की दो कविताएं 71

व्यंग्य

बैंक का पासवर्ड
श्रीकांत चौधरी 72

जलवायु परिवर्तन
अनुराग वाजपेयी 74

कहाँ गये वे लोग
पूरन सरमा 76

समीक्षा ग्राम

कमल किशोर गोयनका कृत: गांधी भाषा-लिपि विचार कोश
कृष्ण वीर सिंह सिकरवार 79

अर्श मलसियानी कृत 'गालिब के पत्र'
अशोक मनोरम 81

डॉ. धर्मपाल साहिल कृत '... और कितनी?'
डॉ. योगिता महेश शर्मा 84

आयोजन

राम और सीता के माध्यम से सांस्कृतिक एकता
शशिप्रभा तिवारी 87

अटल जी की याद में ''आजादी के तराने''
संजय भावना 90

अखिल भारतीय शब्द प्रवाह साहित्य सम्मान
शाश्वत सृजन 91

महात्मा गांधी के जन्म के 150वें वर्ष पर बालकविता संग्रह ''बापू से सीखें'' का विमोचन
डॉ वेद मित्र शुक्ल 93

अंततोगत्वा

अमरीकन प्याले में भारतीय चाय
हरीश नवल 94

प्रकाशकीय

रीवा गांगुली दास
महानिदेशक

सन् 2018 के 'गगनांचल' की अंतिम कड़ी आपके शुभ हाथों में है। यह वर्ष कितनी जल्दी बीता, ऐसा लग रहा है। 'समय को पकड़ना कठिन है, वह हाथ से फिसल जाता है जैसे तेलयुक्त मल्ल' यह भाव गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर का है।

'गगनांचल' ने इस वर्ष का समय आपके कारण बहुत उत्कृष्ट बिताया। प्रत्येक अंक पर आपकी प्रतिक्रिया और सुझावों ने इसे बेहतरी की ओर बढ़ाया।

विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर 'भारतीय संस्कृति विशेषांक' को देश, विदेश से सराहना मिली। अमेरिका में इस विशेषांक पर केंद्रित गोष्ठी का होना तथा इसको मिली अभ्यर्थना को हम 'गगनांचल' का सम्मान प्रतीक मानते हैं।

आने वाले वर्ष में भी आपका मार्गदर्शन हमें मिलता रहे, ऐसी अपेक्षा है।

नमस्कार।

रीवा दास

संपादकीय

हरीश नवल
संपादक

साहित्य, कला, संस्कृति और समाज विज्ञान तथा शिक्षण संदर्भित सैकड़ों लेख और अन्य रचनाएं हर अंक के लिए सुधि रचनाकार भेजते हैं। उनमें से चंद रचनाएं ही पत्रिका में दी जा सकती हैं, यद्यपि संपादक मन–बेमन से मन को भाने वाली रचनाएं न प्रकाशित करने के लिए विवश होता है। बहुत से रचनाकार ऐसी रचनाएं भी प्रेषित करते हैं जो हमारी दृष्टि में पत्रिका के लिए उपयोगी नहीं लगतीं। उनके उद्यम के लिए भी हम साधुवाद देते हैं। पत्रिकाएं न्यून हैं, लेखक कैसे रचना कहाँ प्रकाशित करने हेतु भेजें, इस असमंजस का एक निदान 'सोशल मीडिया' है। फेसबुक पर स्वयं पोस्ट कर अथवा वेब पत्रिकाओं को भेज कर या फिर अपने 'वाट्स ग्रुप' पर रचनाकार अपने को प्रकट करते हैं, विमर्श का हिस्सा बन पाते हैं...।

....कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति का संकट बड़ा है और साधन कम हैं, तब भी राहें निकल आती हैं। आश्चर्य होता है जब कोई रचनाकार हमें दर्जनों रचनाएं एक बारगी में भेजता है। टाईप करवाना, डाक से भेजना आदि में धन भी व्यय होता है, हमें भी चयन में कठिनाई होती है। तभी हम 'अनुरोध' करते है कि कविताएं, लघुकथाएं दो और कहानी, लेखादि एक से अधिक न भेजें।

जिनको हम प्रकाशित कर पा रहे हैं, उनके सहयोग के लिए आभार। जो रचनाएं नहीं प्रकाशित हो पातीं उनके रचनाकारों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि वे 'गगनांचल' में प्रकाशित होने के लिए इच्छुक होते हैं।

सद्‌भव सहित धन्यवाद,

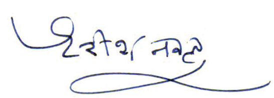

भारतवंशी रोमा तथा यायावर संस्कृति

प्रो. (डॉ.) श्याम सिंह शशि

रोमाओं का प्रवसन एक बार में नहीं हो गया। वे एक के बाद कई समूहों में गए। ये समूह छोटे-बड़े दोनों प्रकार के होते थे। इनमें एक परिवार या एक वंश के लोग भी होते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रक्रिया अब बंद हो गयी है, जबकि योरोप में विभिन्न राष्ट्रीयताओं के लोग बहुत पहले ही बस गए थे।

राहुल सांकृत्यायन ने धर्म और घुमक्कड़ी की व्याख्या करते हुए लिखा है—'किसी-किसी पाठक को भ्रम हो सकता है कि धर्म और आधुनिक घुमक्कड़ी में विरोध है, लेकिन धर्म से घुमक्कड़ी का विरोध कैसे हो सकता है, प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ कितने ही धर्मों के संस्थापक हुए और कितनों ने अद्‌भुत साहस का परिचय दिया तथा दुनिया के दूर-दूर देशों की खाक छानी। फाहियान, ह्वेनसांग और इत्सिंग के दुर्दम्य साहस का परिचय उनकी यात्राओं में पाया जाता है। मार्कोपोलो का उस समय की अज्ञात दुनिया में घूमना और देखी हुई चीजों का सजीव वर्णन आज भी घुमक्कड़ी के हृदय को उल्लसित कर देता है।'

मैंने वर्षों पूर्व यायावर-संस्कृति पर शोध आरंभ किया था और मेरे शोध स्थल थे—चम्बा के मनमोहक धौलाधार, भरमौर और उसके आस-पास के गीत गाते गाँव, गद्दियों और गुज्जरों के काफिले और फिर पंगवाल तथा किन्नरों के बीच। यहाँ की प्रकृति की सात्विकता और ऋजुता ने मेरे मानवशास्त्र को नयी दिशा देकर महानगरों की ओर भेजा। भारतीय आदम जाति सेवक संघ में तथा अन्यत्र मेरे अध्ययन-पात्र यदा-कदा मिलते रहे। उनसे परिवर्तनों के संबंध में प्रश्न करता और फिर कुछ नया जोड़ता। योरोप और अमेरिका में भी यायावरों के बीच रहा। ये यायावर रोमा जिप्सी, सिगानों, मानुष आदि संज्ञाओं से जाने जाते हैं। मेरा स्पष्ट अभिमत है कि ये लोग एक हजार वर्ष पूर्व पश्चिमोत्तर भारत से अपना घर-बार छोड़कर चले गये थे। पश्चिमोत्तर भारत में हिमाचल प्रदेश भी आता है। जिस प्रकार गद्दियों के प्रवास के बारे में कहा जाता है—'**उजड्ड्या लाहौर ते वस्या भरमौर**', उसी प्रकार इन लोगों के बारे में भी अवधारणा है कि रोमाओं के पूर्वज बड़ी संख्या में यूरोप की ओर गये थे। पृथ्वीराज चौहान के अनेक सैनिक मुहम्मद गौरी द्वारा दास बनाकर ले जाए गए थे। वस्तुतः भारतवंशियों का प्रवसन एक हजार वर्ष से भी अधिक पहले सिकंदर पोरस के कुछ पराजित सैनिकों को अपने साथ ले गया था। फिरदौसी का शाहनामा, फ्रांसीसी इतिहासकार पोट्ट आदि के अध्ययन तथा इस लेखक के अद्यतन अनुसंधान के आधार पर रोमा केवल पंजाब से ही नहीं गए बल्कि राजस्थान,

सम्पर्कः बी-4/245, सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली-110029, मो: 9818202120

महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, वर्तमान हरियाणा व दिल्ली तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश आदि से भी गए थे। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व भारतीय गिरमिटिया वेस्ट इंडीज, मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुआना आदि व 50-60 वर्ष पूर्व क्रिमीलेयर भारतीय प्रवासी तमाम विश्व में फैल गए।

रोमा-संस्कृत विश्व की सबसे विशाल यायावर संस्कृति है; क्योंकि वे लोग रोमानिया, युगोस्लाविया, सर्बिया, मेसोडोनिया, हंगरी, जर्मनी, फ्रांस, स्विटजरलैंड, डेनमार्क, फिनलैंड, इटली, ब्रिटेन, कनाडा, अमेरिका और रूस तथा अन्य देशों में घुमक्कड़ी करते रहे हैं। सूर्य मंदिरों की खोज के दौरान, मुझे मैक्सिको में भी यायावर संस्कृति को देखने-परखने का अवसर मिला। वहाँ रोमा-समुदायों को 'जिटानो' के नाम से पुकारा जाता है। उनकी भाषा में आज भी हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के अनेक शब्द मिलते हैं और कुछ शब्द पहाड़ी भाषाओं, गद्दी और गूजरी बोलियों के भी हैं। उनकी रोमानी भाषा में कान, याँख (आँख), बाल, मानुष (मनुष्य), कालो (काला), फेन (बहन), सालो (साला), सासुर (ससुर), तु (तू) आदि शब्द सुने जा सकते हैं।

रोमाओं का प्रवसन एक बार में नहीं हो गया। वे एक के बाद कई समूहों में गए। ये समूह छोटे-बड़े दोनों प्रकार के होते थे। इनमें एक परिवार या एक वंश के लोग भी होते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रक्रिया अब बंद हो गयी है, जबकि योरोप में विभिन्न राष्ट्रीयताओं के लोग बहुत पहले ही बस गए थे। चेकोस्लोवाकिया व अन्यत्र रोमा हंगेरी भाषा भी बोलते हैं। वे यहाँ द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पड़ोसी देश हंगरी से आये थे; क्योंकि युद्ध में चेकोस्लोवाकिया के जिप्सियों का हिटलर ने सर्वनाश कर दिया था, जिसे इतिहास में 'हॉलोकॉस्ट' कहा जाता है। वे किस प्रकार एक देश से दूसरे देश में घूमते-फिरते थे, और अधिक शोध का विषय है। डॉ. केनरिक व डॉ. कोखोनोस्की उन्हें भारत के पूर्व जाट, क्षत्रिय, गुर्जर, बंजारा, धनगर आदि समाजों से जोड़ते हैं।

एक रूसी शोधकर्ता एम.जे. कोनाविन के अनुसार रूस में रोमाओं ने ब्रह्मा, इंद्र, विष्णु, लक्ष्मी और पृथ्वी की कथाओं को अक्षुण्ण बनाए रखा है। पृथ्वी देवी को वे 'माता' कहते हैं। चिकित्सक कोनाविन एक उत्साही भाषा-वैज्ञानिक थे। उनका जन्म सन् 1820 ई. में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन के 35 वर्ष जिप्सी लोगों की उत्पत्ति और जीवन के अध्ययन में लगाये और वे दो बार भारत आये। उन्होंने 123 रोमा कथाएं, 80 पौराणिक परंपराएं और 62 रोमा लोकगीत संकलित किए थे। उनकी कृतियों के अनुवादक डॉ. ऐलीसेफ ने रूसी न जानने वाले पाठकों को उनके शोधकार्य की जानकारी देकर महान सेवा की है। डॉ. कोनाविन इन लोगों के बुद्धिजीवी प्रतिनिधियों से बातचीत करके जिस निष्कर्ष पर पहुंचे थे, वह सब स्मृतियों में सुरक्षित रह सका।

स्वीडन की भांति अमेरिका में रोमा अब धन-धान्य संपन्न हैं। अमेरिका अग्रदूतों और साहसी लोगों का देश माना जाता है। यहाँ कारपेंटर समाज के अब्राहम लिंकन तथा ब्लैक वर्ग के मार्टिन लूथर तक मिलेंगे, जो अपनी मेहनत से महामानव कहलाए। यहाँ रोमा ऐसी मोटरकारों में चलते हैं, जिनमें सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। उन्हें व्यापार करने का पूरा अवसर मिलता है। असीमित संभावनाएं उनके पास हैं। रोमा अब अनेक देशों में बस गए हैं, किन्तु उनके कारवाँ न के बराबर रह गए हैं।

रोमा अब अंतर्जातीय विवाह भी करने लगे हैं। मुझे जर्मनी तथा इंग्लैंड में कुछेक अकादमिक व सुशिक्षित परिवार मिले, जिनमें पति गाजो (गैर-रोमा) थे तो पत्नी रोमा। अब तलाक की संख्या भी बढ़ी है। रोमा बच्चों के लिए सचल विद्यालय खोले गए हैं, किन्तु फ्रांस में उन्हें आज भी पूर्वग्रहों से जूझना पड़ता है। विकास की गति धीमी है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रोमाओं की कांग्रेस बन जाने से इस समाज को लाभ तो मिला किन्तु अभी तक संगठन सुदृढ़ न हो सके।

रोमाओं के संयुक्त परिवार टूटने लगे हैं। कारवाँ संस्कृति भी बदली है। अनेक रोमा पश्चिम के रंग में रंग गए हैं। स्वच्छता तथा पवित्रता के नियम अलग हैं। मृतक को कभी जलाया जाता था, अब दफनाया जाता है। कई विचित्र रीति-रिवाज हैं। उनके लोकगीतों और लोकनृत्यों को दुनिया-भर में लोकप्रियता मिली है। उनका जीवन-दर्शन और संगीत दु:ख-दर्द को भुला देता है, भले ही यह क्षणिक हो। आइये, एक लोकगीत की कुछ पंक्तियां देखें - **''बरो पानी (समुद्र)/सुन दी हुन्नालो ओ दी पानी/ओ हुन्नालो बरो पानी/हुन्नालीन सारसा/कोस इट कान्ट ताल आन्डूरो/ऐन गुरमीन आजा।'' (पानी का गर्जन सुनो/गरजते हुए महासमुद्र का/यह सदैव से गरजता रहता है)।** चार्ली चैपलिन, रेशमा, यूल ब्रिन्नर आदि जैसे कलाकार इस समाज में जन्मे थे। इस दिशा में गहन अनुसंधान की आवश्यकता है।

रोमाओं को पीड़ा सहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था, इसलिये उनके यहाँ इस प्रकार की एक कहावत ही बन गई–''पीड़ा सम्मान का प्रतीक है।'' इविंग ब्राउन ने लिखा है–''उन्हें मारो, उन सबको मारो।'' एक चिल्लाया। ''उनको मर जाने दो।'' दूसरा चिल्लाया। तब मैंने एक तीसरे को कहते सुना–''क्यों? बेचारे निर्धन जिप्सियों ने किया क्या है?''/मैं भगवान को पुकार कर पूछता हूँ–''हाय! हम कितने कम हैं, हम निर्धन काले लोग?'' कुछ देशों में रोमाओं को अपराधी वर्गों में शामिल किया गया। भारत में भी अंग्रेजों द्वारा कई ऐसी जातियों को अपराधी करार दिया गया था।

वास्तव में जिन समाजों ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी और भारत की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किया, उन्हें अपराधी जातियां घोषित कर दिया गया, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। यही स्थिति विदेशों में रोमाओं की रही। भारत की क्षत्रिय–राजपूत जातियों की तरह रोमा समुदायों में 75 प्रतिशत एबीओ रक्त समूह पाया जाता है तथा अब उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति प्राय: भारत के पिछड़े, दलित आदिवासी वर्गों की तरह है।

रोमा परंपरागत परिवारों में शिशु का जन्म देवी घटना मानी जाती है, जच्चा को कभी किसी खुले स्थान में या किसी गाजो (गैर–जिप्सी) के घर प्रसव करना होता था। जन्म देने के बाद बच्चे को वह अपने तंबू में लेकर आ जाती थी। चार सप्ताह तक उसे अशुद्ध माना जाता था। कई देशों में यायावर रोमा नवजात शिशु को तुरंत ठंडे पानी में नहलाते हैं ताकि वह सर्दी का प्रकोप सह सकें। दुष्ट आत्माओं से बचाने के लिये विशेष प्रकार के विधि–विधान हैं।

रोमा समुदायों में सतसारा, काली व कुछ भारतीय देवी–देवताओं के प्रति आस्था रही है। उनके अनेक पूर्वज मुसलमान व ईसाई बन गए थे। किन्तु कुछेक रोमाओं में आज भी हिंदुत्व तथा पेगाजिन्म विद्यमान हैं। विश्व के कोने–कोने से लाखों रोमा आज भी प्रतिवर्ष दक्षिण फ्रांस में एकत्र होते हैं और सतसारा देवी की अपने ढंग से पूजा करते हैं। उसे वे काली कहते हैं, जो दुर्गा का स्वरूप मानी जाती हैं। उसे बंगाल–परंपरा की तरह जलस्पर्श कराया जाता है, पर विसर्जित नहीं किया जाता। धर्म उनके जीवन का अंग है। कभी उनके यहाँ यज्ञ भी होते थे, गोत्र–परंपरा थी और हिंदू कर्मकांड भी प्रचलित थे, किन्तु यायावरी के कारण जीवन–दर्शन ही बदल गया। पर जो कुछ शेष है, वह भारत की पुरातन परंपराओं की धरोहर है।

रोमाओं में शिक्षा का कोई महत्व नहीं था क्योंकि वह तो उनको बड़े–बूढ़ों से ही मिल जाती थी। इंग्लैंड सहित कई देशों में सचल जिप्सी विद्यालय खोले गए थे। शायद अब उनका स्वरूप आधुनिक दूरस्थ शिक्षा प्रणाली की तरह बदल गया है। आजकल रोमा समाज के इलीट वर्ग शिक्षा का महत्व समझने लगे हैं। उनमें प्रोफेसर, शिक्षक, डॉक्टर, इंजीनियर, उद्यमी, बिजनेसमैन व राजनेता आदि भी देखे जा सकते हैं। 'जिप्सी' व्यंजक शब्द समझा जाता है। अत: उसके स्थान पर 'रोमा' शब्द सर्वमान्य हो गया है, जो बहुवचन होता है, किन्तु वह हिंदी में 'रोमाओं' बन गया है। इसी तरह 'रोम' एकवचन है, किन्तु उसे 'रोमा' लिखते हैं।

रोमा भारत को आज भी बारो थान (बड़ा स्थान) कहते हैं। वर्ष 2001 में उन्हें जब हरिद्वार तथा ऋषिकेश की यात्रा कराई गई तो उन्होंने श्रद्धापूर्वक मंदिरों के दर्शन किये तथा वे यहाँ का गंगाजल अपने साथ ले गए। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे भविष्य में अपने पूर्वजों की धरोहर, भारतीय संस्कृति को अपने–अपने देशों में सुरक्षित रखेंगे। यह सम्मेलन मोदी फाउंडेशन, हिंदू हेरिटेज प्रतिष्ठान, रिसर्च फाउंडेशन व संस्कृति मंत्रालय के सहयोग से संपन्न हुआ था। वे तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी से भी मिले थे।

वर्ष 2007 में जर्मन की एक रोमा कलाकार कथारीना पोलक की चित्र–प्रदर्शनी रोमा रिसर्च सेंटर, रिसर्च फाउंडेशन, भारत विद्याभवन तथा आइफैक्स आर्ट गैलरी दिल्ली में लगाई गई थी। स्थानीय कलाकारों ने भाग लिया था।

रोमा समाज में महात्मा गांधी, इंदिरा गांधी तथा आजकल वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी व विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज अत्यंत लोकप्रिय हैं। फरवरी 2016 में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद के तत्वधान में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय रोमा सम्मेलन में अनेक देशों के रोमा विद्वानों व कलाकारों ने भाग लिया था, जिसका उद्घाटन श्रीमती सुषमा स्वराज्य ने किया था। कहना न होगा रोमा संस्कृति का क्रमश: विकास होता जा रहा है।

***

आदिकालीन संत साहित्य में 'अहिंसा'

डॉ. मीरा निचळे

"भारतीय दर्शन-चिंतन की परंपरा को देखें या विश्व के किसी भी संत को देखें, उनकी वाणी को अमरत्व का वरदान प्राप्त है। शाश्वत की साधना करनेवाले किसी देश-भाषा-क्षेत्र, जाति-धर्म के संत हों, उनका साहित्य काल के प्रवाह में कभी खंडित नहीं हुआ है। संत अखंड रूप में निरंतरता से समय का प्रतिबिंब अपने में दिखाता हुआ शाश्वत रूप से खड़ा है। उसका आधार सत्य है। 'सत्य' युगों-युगों से 'सत्य' ही रहा है। सत्य कभी परिवर्तित नहीं होता बल्कि उसका प्रमाण मनुष्यों द्वारा कम-अधिक किया जाता रहा है। इसलिए सत्य स्वयं में शाश्वत है।"

आदिकाल को हिंदी साहित्य एवं इतिहास की व्यापक पृष्ठभूमि के रूप में देखा जा सकता है। भाषा की दृष्टि से इस काल में (769 से 1400 ई.) हिंदी के आदि रूप का बोध पा सकते हैं। साथ ही हिंदी साहित्य-चेतना की दृष्टि से उन सभी प्रमुख प्रवृत्तियों का आदिरूप भी यही देखते हैं। जो रूप भक्तिकाल के आधुनिक काल तक विकसित होता रहा।

इस काल में संस्कृत, अपभ्रंश और उत्तर अपभ्रंश अर्थात हिंदी भाषा में साहित्य लिखा गया। आदिकालीन भक्ति साहित्य भाषा की दृष्टि से दो रूपों में प्राप्त होता है। 1. अपभ्रंश प्रभावित 2. अपभ्रंश प्रभाव से मुक्त। अपभ्रंश प्रभावित साहित्य के अंतर्गत सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य तथा नाथ साहित्य आ जाता है।

यह सर्वज्ञात है कि आ. शुक्ल ने जैन, बौद्ध धर्म की रचनाओं को आदिकाल से बाहर किया था। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट किया कि केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देखकर इन ग्रंथों को साहित्य की सीमा से बाहर करना अनुचित है। वे कहते हैं, "धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेश होना काव्यत्व का बाधक नहीं है। अगर उसे बाधक समझा जाय तो हिंदी के भक्तिकाल के सभी भक्तों और संतों की रचनाओं को असाहित्यिक घोषित करना होगा।..." इससे यह बात स्पष्ट होती है कि आदिकाल में लिखा गया जैन, बौद्ध, सिद्ध धार्मिक रचनाएँ होने के बावजूद वह हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है। जिसमें नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक उपदेशों को सरसता के साथ लिखा गया है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि धार्मिक या सांप्रदायिक साहित्य को संत साहित्य कहा जाना चाहिए?

आधुनिक युग के संत आचार्य विनोबा के शब्दों में "संत वह है जिसका हृदय शुद्ध, निर्मल, भक्ति-परायण और सत्यनिष्ठ है।" डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का कहना है, "संत वह है जो पृथ्वी पर निवास करते हुए दिव्य-लोक का संदेश भूतल पर लाता है, जो पक्षी के समान आकाश में उड़कर भी वृक्ष पर आकर विश्राम करता है, जो व्यष्टि के केंद्र में ऊँचा उठकर समष्टि जीवन के

सम्पर्क: हिंदी विभाग, डॉ. बा.आं.म.विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

प्रति आस्थावान होता है, जो स्वार्थ को त्याग कर सामूहिक-हित की बातें सोचता है।''

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकालीन ज्ञानाश्रयी भक्तों के साहित्य को संत-साहित्य कहा गया है। भक्त और संत शब्द को समानार्थी माना गया है किन्तु भक्तिकालीन साहित्य में 'संत' शब्द एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। निर्गुणोपासकों के लिए 'संत' और सगुणोपासकों के लिए 'भक्त' शब्द व्यवहृत किया जाता है। डॉ. माधव सोनटक्के के अनुसार 'संत' साधक की एक अवस्था है।'' 'संत' अवस्था कैसे हो सकती है? 'संत' को अवस्था नहीं प्रवृत्ति कहना चाहिए। क्योंकि अवस्था परिवर्तित हो सकती है, प्रवृत्ति नहीं। मेरे विचार में 'संत' सद्‌भाव, सद्‌विचार-सदाचार, उदात्त एवं परहित की अखंड मंगल कामना करनेवाली प्रवृत्ति हैं। जो महा समाधि में जाने के पश्चात भी अपने स्पंदनों से लोक-कल्याण का कार्य करती है। इस रूप में उनका साहित्य कालजयी बनता है।

'संत' और 'भक्त' शब्द समानार्थी होना भी संभवनीय नहीं लगता। भक्त हर कोई होता है किन्तु भक्ति जब व्यक्तित्व की सारी सीमाएँ पार करती है तब वह 'व्यापक करूणा' का रूप धारण करती है, परोपकार की उदात्त भावना आचरण में अभिव्यक्त होती है। जिससे व्यक्ति अनायास ही संत पद पर आरूढ़ होता है। केवल निर्गुण शाखा के 'संत' को संत कहना उनके व्यापकत्व को दर्शाता है किंतु सगुण उपासक को भी अन्य साहित्य में संत कहा जाता है। सगुण हो या निर्गुण दोनों का लक्ष्य एक ही होता है। सगुण साधक को साधना पथ पर एक पड़ाव निर्गुण का पार करना ही होता है। यही कारण है कि मराठी सगुण के संत तुकाराम, एकनाथ अद्वैत (ज्ञान) की अवस्था में निर्गुण का बखान करते हैं (हिंदी में)। इसलिए संत को किसी पद्धति विशेष से जोड़कर देखना उन्हें सीमित करना है।

भारतीय दर्शन-चिंतन में किसी देहदारी व्यक्ति को गुरू, सद्‌गुरू या संत नहीं कहा गया। जो परम आत्मा, परम-चेतना की ओज, तेज, सामर्थ्य के रूपाकार को मानवों के लिए उपलब्ध कराता है, उसे संत कहा गया। संत का कोई पक्ष या विपक्ष भी नहीं होता। कोई संप्रदाय भी नहीं होता। उसकी बद्धता, प्रतिबद्धता, प्राणीमात्र के प्रति होती है, किसी भी प्रचलित धर्म-संप्रदाय के प्रति नहीं, किसी भी वर्ग-वर्ण, कुल-गोत्र, जाति-वंश, स्थान-क्षेत्र, देश-प्रदेश से वह स्वयं को जोड़ते-बांधते नहीं। इन अर्थो में सार्वभौम, सार्व-कालिक, सर्व-कल्याणक संत होता है। उसका समूचा जीवन ही एक सुदीर्घ प्रार्थना होती है। वह सम+अर्थ = समर्थ होता है। प्रत्येक सम और विषम दोनों ही उसके लिए सम होते है। नितांत समत्व की दृष्टि ही संतों का परिचायक होती है। और इस तरह के संत द्वारा निर्मित साहित्य संत साहित्य कहलाता है।

आदिकालीन जैन, सिद्ध, नाथ साहित्य को उपरोक्त मापदण्डों के आधार पर परखा जाये तो इस साहित्य में व्याप्त सद्‌भाव, सदाचार, दृढ़ विश्वास, जीवन के प्रति आस्था, गुरू महिमा का प्रतिपादन आदि विशेषताएँ इस साहित्य को धार्मिकता एवं सांप्रदायिकता की सीमारेखा से उठाकर व्यापकत्व देता है जो कि संत एवं संत साहित्य की प्रमुख विशेषता है।

भारतीय दर्शन-चिंतन की परंपरा को देखें या विश्व के किसी भी संत को देखें, उनकी वाणी को अमरत्व का वरदान प्राप्त है। शाश्वत की साधना करनेवाले किसी देश-भाषा-क्षेत्र, जाति-धर्म के संत हों, उनका साहित्य काल के प्रवाह में कभी खंडित नहीं हुआ है। संत अखंड रूप में निरंतरता से समय का प्रतिबिंब अपने में दिखाता हुआ शाश्वत रूप से खड़ा है। उसका आधार सत्य है। 'सत्य' युगों-युगों से 'सत्य' ही रहा है। सत्य कभी परिवर्तित नहीं होता बल्कि उसका प्रमाण मनुष्यों द्वारा कम-अधिक किया जाता रहा है। इसलिए सत्य स्वयं में शाश्वत है। यही सत्य संतों के जीवन की धूरी होती है।

संत साहित्य के मर्मज्ञ श्री वियोगी हरि के अनुसार, ''सत्य आचरण जिन्होंने अपने जीवन में पूरा किया, सत्य का चिंतन किया, सत्य को वाणी पर उतारा, मन-वचन-कर्म से उसका आचरण किया और आचरण करने के बाद जो रसास्वादन मिला उसे सारे संसार में बिखेर देने के लिए जिनके मन में व्याकुलता होती है, जिन्हें लगता है कि उन्हें जो मधुर रस मिला वह दूसरों को भी देते चले जाएं वे ही संत हैं।''

आदिकाल की उपलब्ध सामग्री में सबसे अधिक ग्रंथों की संख्या जैन ग्रंथों की है। श्वेतांबर और दिगम्बर साधुओं ने क्रमश: राजस्थान, गुजरात, दक्षिण भारत और मध्यप्रदेश में जैन साधु धर्म प्रसार में सक्रिय थे।

आ. देवसेन, आ. शालिभद्र सूरि, आ. असगू, जिन धर्मसूरि, विजय सेन सूरि, विनय चंद सूरि, आदि कवि आचार्य महत्वपूर्ण हैं, जिनका महावीर द्वारा दीक्षित जीवन सफल हुआ है तथा

इन्होंने समग्र जीवन जैन तत्व के प्रसार में व्यतीत किया है। गाँव-गाँव, नगर-नगर घूमकर जनमानस की पीड़ा का हरण किया है। अहिंसा और निर्वेद के महत्व का प्रतिपादन उस समय किया जिस समय युद्ध करना प्रत्येक प्रादेशिक राजा और राज्य की विवशता थी, जिसमें सामान्यजन बुरी तरह पीसे जा रहे थे।

चारित्रिक दृढ़ता, जो वर्तमान की आवश्यकता नहीं अनिवार्यता बनी है। इसका प्रतिपादन 1390 से 1400 के बीच जिन धर्मसूरि द्वारा लिखित 'स्थूलिभद्र फाग' लिखित 'नेमिचंद चउपई' में पशुओं की निरीह हत्या के क्रंदन की आलोचना नेमिचंद के विवाह के माध्यम से की गयी है। बारातियों के नियोजित भोज के लिए लाये गये पशुओं के क्रंदन से विह्वल होकर बिना ब्याह किये कुँवर नेमिचंद लौट जाता है। अंततः दीक्षा लेकर कैवल्य को प्राप्त करता है, इसका आदर्श आज भी जैन भाईयों के सन्मुख है। यह कथा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी तत्कालीन समय में थी।

जैन मुनियों ने सबसे अधिक बल 'अहिंसा' पर दिया है। अहिंसा को लेकर किये हुए उनके उपदेश शायद ही किसी कालखंड में इतने अधिक प्रासंगिक रहे होंगे जितने वर्तमान परिवेश में है।

'भरतेश्वर बाहुबली रास' जैन साहित्य की रास परम्परा की प्रथम रचना एवं मौलिक मानी जाती है। इसकी रचना शालिभद्र सूरि ने की थी, अयोध्या नगर के राजा ऋषभ जिनेश्वर दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबली के माध्यम से अहिंसा और निर्वेद का महत्व स्पष्ट किया गया है। भरतेश्वर संपूर्ण दिग्विजय के बाद अपने भाई बाहुबली से वचन युद्ध, दृष्टि युद्ध और दंड युद्ध में हार जाता है और मर्यादा तोड़कर बाहुबली पर चक्र छोड़ता है। कोई हानि नहीं होती परंतु भरत के इस व्यवहार से बाहुबली दुखी होकर विरक्त हो जाता है। दीक्षा ग्रहण कर निर्वाण को प्राप्त होता है। भरत अपनी भूल स्वीकार कर उसके चरणों में मस्तक टेकता है जिसका कोई लाभ नहीं होता। आज हर व्यक्ति भरतेश्वर की अवांछनीय सत्तापिपासा में अपने ही भाई पर शस्त्र उठा रहा है, किंतु बाहुबली इसकी व्यर्थता का आदर्श सन्मुख रखता है।

अहिंसा हमारा वह संस्कार है जिसने म. गांधी के माध्यम से समग्र विश्व को मोहित किया था। पतंजलि ने अपने 'योगसूत्र' में ''अहिंसा प्रतिष्ठिया। तत्स्य त्रिधौ वैर त्यागः।।'' अर्थात अंतःकरण में अहिंसा की प्राणप्रतिष्ठा होने पर संपर्क में आनेवाले के मन का बैर नष्ट होता है, कहा है। 'हठयोग प्रदीपिका' में 'अहिंसा' अर्थात हिंसा से स्वयं को रक्षित करनेवाले 'संयम' को कहा है।

अहिंसा अर्थात प्रेम-सद्भाव है। ऋग्वेद में इसे इंद्र का गुणगान, यजुर्वेद में 'पीड़ा न पहुंचाना' तथा महाभारत के महाप्रस्थनिका पर्व 'अहिंसा परमोधर्म' अर्थात अहिंसा 'सर्वोच्च धर्म' के रूप में रूपायित की गयी है। संत ज्ञानेश्वर ने 'भावार्थ दीपिका' में -

'जगाचिया सुखोद्देशे। काया वाचे मानसे
रहाटणे त्या ऐसे। अहिंसा नाम।।'

अर्थात, काया, वाणी, मन से विश्व को प्रसन्नता मिले। इस दृष्टि से होने वाले आचरण को ज्ञानेश्वर अहिंसा कहते हैं। म. गांधी ने नीति बिना किया गया व्यापार, विवेक के अभाव में मिला आनंद, तत्व के बिना की गयी राजनीति, बिना चरित्र के ज्ञान, बिना मानवता का विज्ञान, बिना कष्ट का धन तथा त्याग के अभाव में की गयी पूजा, इन सात आचरण-व्यवहार को पाप मानकर हिंसा का प्रचार एवं प्रसार को रोकने को ही वास्तव में 'धर्म' कहा है।

आज जब कि विश्व आतंकवाद की छाया में साँस ले रहा है। प्रत्येक देश स्वयं के पास परमाणु का होना विश्व में सबसे अधिक शक्तिशाली होना समझ रहा है। महिलाएँ तथा बच्चे अमानवीय अत्याचार के बलि चढ़ाते जा रहे हैं। विभिन्न देशों-प्रदेशों में विश्व भर में संघर्ष बढ़ ही रहा है। भारत पाकिस्तान के संबंध दिन-ब-दिन खराब होते जा रहे हैं। चीन अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहा है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा समिति द्वारा वैश्विक स्तर पर आतंकवाद नष्ट करने के लिए बार-बार आवाहन करने के पश्चात भी चीन की अलगाववादी भूमिका भारत, ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका के लिए चिंता का विषय बनी है। इन्ही स्थितियों के फलस्वरूप विश्व की आधी आबादी अहिंसा के महत्व को समझ रही है, अहिंसा को बढ़ावा मिले, इसके प्रचार-प्रसार के लिए प्रयासरत है। बहुत सारे नक्सलियों ने 'अहिंसा' की शक्ति का महत्व समझ लिया है। यही कारण है कि वे सरकार के सम्मुख शस्त्र डालकर शांति से जीवनयापन कर रहे हैं।

जैन आचार्य मुनि तथा भगवान महावीर एवं बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अहिंसा जो आधुनिक युग में महात्मा गांधी के माध्यम से पुनः प्रकाशित हुई, आतंक की छाया में पल रहे विश्व का पथ प्रदर्शन करने में समर्थ हैं।

***

आधुनिक हिंदी कविता में भारतीय अस्मिता

डॉ. प्रीति प्रकाश प्रजापति

"विभाजन का दंश झेलकर देश आजाद हुआ, पर देश की जनता शोषण, जहालत और गरीबी की जकड़ से मुक्त नहीं हुई। समाज में व्यापक स्तर पर व्याप्त विसंगतियों और तीव्र अंतर्विरोधों से उत्पन्न विडंबना ने मोहभंग की स्थिति को जन्म दिया। इस अंतर्विरोध, विडंबना, संत्रास, तनाव और मोहभंग की अभिव्यक्ति तत्कालीन नई कविता में भी हुई।"

सम्पर्क: 4, फैकल्टी अपार्टमेंट्स, लेडी श्रीराम कॉलेज, नई दिल्ली

भारतीय अस्मिता की अवधारणा इकहरी न होकर विविधता परक और बहुआयामी रही है। विविधता में एकता, व्यापकता और सामंजस्य इसके मूलभूत लक्षण हैं। इसी से अनवरत विरोधों, आपदाओं, आक्रमणों और आघातों के बावजूद उसकी आत्मा अक्षुण्ण है। इकबाल ने यूँ ही नहीं कह दिया–

> ''कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
> सदियों रहा है दुश्मन दौर–ए–जमाँ हमारा।''

भारत की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपरा में विभिन्न दर्शनों, धर्मों, चिंतनधाराओं, जीवनपद्धतियों, भाषाओं का सतत सह–अस्तित्व, पल्लवन और पोषण उपरोक्त तथ्यों का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। जिस काल विशेष में उसके इस वैविध्यमय स्वरूप में संकीर्णता के तत्व आ मिले हैं, उसका विकास अवरुद्ध हुआ है, चाहे वह स्तर चेतना जगत का हो अथवा बाह्य जीवन प्रणाली का यदि साहित्य किसी न किसी रूप में अपने समय और समाज की आंतरिक चेतना और बाह्य जीवन पद्धति की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति है, तो भक्ति आंदोलन और रीतिकाल के साहित्य में अभिव्यक्त जीवन–बोध के वैभिन्न्य में क्रमश: भारतीय अस्मिता के अनेक आयामी और इकहरे स्वरूप का अंतर देखा जा सकता है।

भारत में 19वीं शताब्दी के दौरान उद्‌बुद्ध नवजागरण की प्रक्रिया के अंतर्गत भारतीय अस्मिता की खोज और पहचान के प्रयास नए सिरे से आरंभ हुए। नवजागरण की इस प्रक्रिया का स्वरूप द्वंद्वात्मक है। यह द्वंद्व है–परंपरा और आधुनिकता का, जिसमें जीवन और जगत के विभिन्न क्षेत्रों में नवजागरण के मूल में दो आधारभूत प्रेरक तत्व सक्रिय थे–

(1) देश की पराधीनता का तीव्र–बोध और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति की आकांक्षा।

(2) भारतीय परंपरा और संस्कृति के विस्मृत गौरवशाली अतीत को उद्‌घाटित कर हतदर्प भारतवासियों में आत्म–सम्मान का भाव जगाना।

इन दोनों तत्वों ने जहाँ एक ओर भारत के स्वाधीनता आंदोलन

को प्रसार और गति प्रदान की, वहीं दूसरी ओर विश्व-पटल पर भारतीय अस्मिता को पुनर्निर्मित और प्रतिष्ठित करने में नियामक भूमिका अदा की। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, ऐनी बेसेंट, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, अरविंद घोष और महात्मा गांधी जैसे मनीषियों ने भारतीय धर्म, दर्शन, भाव और चिंतन-परंपरा के विभिन्न पक्षों की व्याख्या और पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की। महान द्रष्टा और साहित्यकार के रूप में रवींद्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' को 1913 में 'नोबल' पुरस्कार प्राप्त हुआ। पराधीन देश के एक कवि को मिलने वाले इस सम्मान ने विश्व-स्तर पर भारतीय अस्मिता को पुनर्स्थापित कर दिया।

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग में भारतेंदु युग से लेकर द्विवेदी युग और छायावाद तक हम स्वाधीनता आंदोलन और नवजागरण की चेतना के आरंभ, बहुपक्षीय विकास और चरमोत्कर्ष को लक्षित कर सकते हैं। इन तीनों काव्यधाराओं में देश-प्रेम की अभिव्यक्ति जिन विभिन्न रूपों में हुई है, वह इस तथ्य का प्रमाण है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा और सुमित्रानंदन पंत आदि अनेक रचनाकारों की कृतियों में भावबोध और चिंतन के स्तर पर भारत देश और भारतीय अस्मिता का जो व्यापक, उदार, मानवतावादी और प्रगतिशील स्वरूप उभरता है, उसमें जनहित की चिंता, उद्बोधन और आत्मविश्वास की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति हैं। भारतवासियों को आत्म-मंथन के लिए उद्बोधित करती मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ आज भी कितनी प्रासंगिक हैं:

> ''हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी?
> आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएं सभी।''

यह स्थिति आजादी मिलने से पूर्व की है। उस समय के साहित्य में पराधीन देशवासियों पर होने वाले औपनिवेशिक शोषण से उत्पन्न दुर्दशा, पीड़ा और असहाय अवस्था का चित्रण तो है, पर साथ ही साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष चेतना, परिवर्तन, मुक्ति की आकांक्षा और सुखद भविष्य को लेकर एक आशान्वित दृष्टि भी सन्निहित रही है।

कवियों ने समकालीन जीवन ही नहीं, इतिहास और पुराण के क्षेत्रों से विषयों को लिया और समकालीन युग-बोध में उन्हें रूपांतरित कर ऐसी समर्थ रचनाएं प्रस्तुत कीं जिन्होंने जनमानस में भारत की वैविध्यमय, समावेशी संस्कृति और उसके द्वारा पोषित मानवीय-मूल्यों को जागृत और पुनर्जीवित करने में प्रेरक भूमिका निभाई। प्रिय-प्रवास (हरिऔध); भारत-भारती, साकेत, यशोधरा (मैथिलीशरण गुप्त), अशोक की चिंता, पैशोला की प्रतिध्वनि, शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण, लहर, कामायानी (प्रसाद); जागो फिर एक बार, महाराज शिवाजी का पत्र, तुलसीदास, राम की शक्ति-पूजा (निराला); इत्यादि और भी न जाने कितनी ही कृतियां उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं।

छायावाद के पश्चात् प्रगतिवाद में भी मानवीय करूणा, शोषण के विरुद्ध आक्रोश, संघर्ष-चेतना तथा क्रांति की आकांक्षा के माध्यम से व्यवस्था में बदलाव के प्रति आस्था मुखर हुई है। इन कविताओं में अभावग्रस्त, पिछड़ी, शोषित और पीड़ित किंतु अनथक संघर्ष-चेतना व जिजीविषा से युक्त श्रमजीवी जनता के जीवन-यथार्थ का व्यापक और विविधमुखी चित्रण हुआ। यह चित्रण इस बात का प्रमाण है कि आयातित विचारधारा होने पर भी श्रेष्ठ कवियों ने भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में उसे आत्मसात कर रचना-धर्मिता में रूपांतरित किया। इससे निश्चित ही भारत की मानवतावादी चिंतन-परंपरा अधिक पुष्ट और समृद्ध हुई। उसे एक नया आयाम मिला, उसकी परिधि अधिक विस्तृत हुई। इस दृष्टि से नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन की रचनाएं प्रमाणस्वरूप देखी जा सकती है।

1943 में तारसप्तक के प्रकाशन के साथ हिंदी कविता में भावबोध, चिंतन और रचनाशीलता की नई भूमि की खोज आरंभ हुई। इसे प्रयोगवाद नाम से अभिहित किया गया। तारसप्तक के अंतर्गत गजानन माधव 'मुक्तिबोध', भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचंद्र जैन, रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' और गिरिजाकुमार माथुर शामिल थे। तारसप्तक की यह विशेषता थी कि इसके प्रथम संकलन में प्रगतिवादी विचारधारा के कवि भी थे।

धीरे-धीरे प्रयोगवाद की इस काव्यधारा का फोकस समकालीन परिवेश और समसामयिक समस्याओं से सरककर व्यक्ति के मनोजगत की जटिलताओं, अंतर्द्वंद्व और कुंठाओं के विश्लेषण, अस्तित्वबोध, अनुभूति की प्रामाणिकता और अनुभवजन्य सत्य की खोज पर केंद्रित होता चला गया। व्यक्तिवादी विद्रोह चेतना से उत्प्रेरित होकर भारतीय चिंतन परंपरा, संस्कृति और जीवनमूल्यों की नवीन व्याख्या, विश्लेषण और मूल्यांकन को तरजीह दी गई।

भावुकता मूलक आस्था के स्थान पर गैर-रोमांटिक चिंतन और तर्क प्रणाली का दावा किया गया। वे काव्यधारा साहित्य को स्वायत्त मानकर मध्यवर्गीय मनुष्य पर केंद्रित रही। बौद्धिकता के आग्रह के कारण सामान्यजन से जुड़ी चिंताएं, उनका जीवन यथार्थ, उनकी व्यथाओं के चित्रण में प्रयोगवाद के परवर्ती कवियों का रुझान प्राय: नहीं रहा। स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1954 में 'नई कविता' आंदोलन आरंभ हुआ, जिसमें कुछ मार्क्सवादी और कुछ अन्य नए कवि शामिल हुए।

आजादी मिलने से पूर्व की हिंदी कविता में भारतीय अस्मिता का जो स्वरूप लक्षित होता है, उसके मूल में राष्ट्र प्रेम की उदात्त भावना निहित है। आधुनिक संदर्भों में परंपरा का मूल्यांकन, आत्म-विश्लेषण तथा मूल्यान्वेषण वहाँ है। साथ ही एक आस्थामूलक जीवन दृष्टि थी, जो यथार्थ और आदर्श के बीच द्वंद्व में समस्याओं के समाधान की राह खोज लेती है, किंतु आजादी मिलने के बाद स्वशासन स्थापित हो जाने पर देश और जनता की स्थिति में जिस आमूल-चूल परिवर्तन की आशा थी, वह कहीं न कहीं खंडित हुई। पराधीन देशवासियों ने अपने लिए जो सुख-स्वप्न देखे थे, उनके पूर्ण होने की आशा धीरे-धीरे धूमिल पड़ती चली गई।

आजादी से पूर्व देश की दुर्दशा के लिए अंग्रेजों को जिम्मेदार बताकर दोषी ठहराना आसान था, किंतु अपने ही शासनतंत्र में सिद्धांत और व्यवहार के स्तर पर दो मुँहेपन के कारण जनसामान्य के हितों की उपेक्षा बहुत कचोट, निराशा और आक्रोश उत्पन्न करने वाली थी। शासनतंत्र और नौकरशाही में पनपते भ्रष्टाचार और अवसरवाद ने धीरे-धीरे सत्ताधारियों और आम जनता के हितों के बीच खाई पैदा कर दी, जिसने क्रमश: विरोध का रूप धारण कर लिया।

विभाजन का दंश झेलकर देश आजाद हुआ, पर देश की जनता शोषण, जहालत और गरीबी की जकड़ से मुक्त नहीं हुई। समाज में व्यापक स्तर पर व्याप्त विसंगतियों और तीव्र अंतर्विरोधों से उत्पन्न विडंबना ने मोहभंग की स्थिति को जन्म दिया। इस अंतर्विरोध, विडंबना, संत्रास, तनाव और मोहभंग की अभिव्यक्ति तत्कालीन नई कविता में भी हुई।

स्वतंत्रता-पूर्व आधुनिक हिंदी कविता में भारतीय स्वाधीनता -आंदोलन और नवजागरण की प्रेरणा से भारतीय अस्मिता का जो स्वरूप उभरा, उसमें विविधता के साथ-साथ व्यापक स्तर पर गहन आत्मविश्लेषण तो है, किन्तु इस आत्मविश्लेषण में औपनिवेशिक सत्ता के साथ प्रतिद्वंद्विता के कारण आत्मगौरव का बोध भी प्रबल है। नई कविता में आत्मगौरव का बोध क्षीण होता चला गया है। आजादी मिल चुकी है, कोई निश्चित लक्ष्य अब सामने नहीं है। आजादी मिलने की खुशी है पर आजादी को सहेजना, बनाए रखना, जनाकांक्षाओं और हितों की रक्षा करते हुए देश को विकास की दिशा में अग्रसर करना, विश्व स्तर पर उसकी छवि का पुनर्निर्माण करना, उस समय के नेतृत्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती थी।

नेताओं, राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के नैतिक पतन और परस्पर सांठ-गांठ से जनता के मानस में धीरे-धीरे एक प्रकार की कुंठा, आक्रोश, निराशा, हताशा और उदासीनता का भाव प्रबल होता गया, जिसने क्रमश: गहन अनास्था और अवसाद का रूप ले लिया। इससे समूचे परिवेश में मूल्य-विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो गई। क्या हो रहा है और क्या होना चाहिए, के तीव्र बोध ने यथार्थ और आदर्श के बीच की द्वंद्वात्मक स्थिति को सामने रखा। राष्ट्रीय चरित्र की जो संकल्पना आजादी से पहले विद्यमान थी, उसमें कहीं न कहीं अब दरारें पड़ने लगीं।

नई कविता धारा के कवियों ने अपनी रचनाओं में यथार्थ और आदर्श के विविध स्तरीय द्वंद्व के चित्रण के माध्यम से इस राष्ट्रीय चरित्र का वर्णन, विश्लेषण और मूल्यांकन प्रस्तुत किया। यह वर्णन भी सीधा, सपाट और इकहरा न होकर अनेक स्थलों पर सूक्ष्म, सांकेतिक और प्रतीकात्मक है। बहुपक्षीय द्वंद्वात्मकता को आत्मसात करने के कारण ये कवि भारतीय अस्मिता के विविधतापरक रूप की जनतांत्रिक अभिव्यक्ति करने में समर्थ हो सके।

परिवेश के साथ असामंजस्य के बोध के कारण रचनाकारों की चेतना में घटित होने वाली द्वंद्व की प्रक्रिया के फलस्वरूप नई कविता में भाव-बोध के स्तर पर व्यक्ति और समाज के बदलते और जटिल होते मानवीय-संबंधों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति हुई है। हम देखते हैं कि नए कवियों ने अपनी कविताओं में समाज के अनेक स्तरीय जीवन यथार्थ की विभिन्न परतों को अपनी-अपनी दृष्टि से उकेरा। भिन्न-भिन्न वर्गीय पृष्ठभूमि से आए विभिन्न संवेदनाओं और विचारधाराओं के इन कवियों की रचनाओं में लोक और अभिजात्य चेतना की टकराहट से, ग्रामीण और शहरी जीवन-यथार्थ का विविधमुखी चित्रण हुआ है।

इन कविताओं में एक ओर प्रकृति प्रेम और सहज नैसर्गिक निश्छल मनुष्यता का स्वर मुखरित है तो दूसरी ओर यांत्रिक सभ्यता व अतिशय बौद्धिकता के दबाव से उत्पन्न असंवेदनशीलता, उदासीनता, जटिल मानसिक ग्रंथियों में उलझा-बिंधा, अंतर्जगत, उसका अकेलापन व अजनबीपन भी अंकित है। संक्षेप में, बाह्य और अंतर्जगत को उसकी समग्रता और जटिलता के साथ प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। कविता में लघु मानव की प्रतिष्ठा से आम आदमी अपने सामर्थ्य-कमजोरियों, आकांक्षाओं-कुंठाओं, पीड़ा-उल्लास, हताशा-आक्रोश, दृढ़ संकल्प और कर्मठता के लिए प्रस्तुत हुआ।

मूल्य-विघटन के इस दौर में परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्वात्मक बोध ने पुरानी मान्यताओं और जीवन मूल्यों की प्रासंगिता पर प्रश्न चिह्न लगाए। नवीन मूल्यान्वेषण की छटपटाहट से उद्वेलित हो नए कवि भारतीय पौराणिक आख्यानों को नए संदर्भों में व्याख्यायित कर, उनका रचनात्मक रूपांतरण करने में प्रवृत्त हुए। इस दृष्टि से धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' व 'कनुप्रिया', अज्ञेय की 'असाध्य वीणा', नरेश मेहता की 'संशय की एक रात', कुंवर नारायण की 'आत्मजयी'; भवानी प्रसाद मिश्र की 'कालजयी', दुष्यंत कुमार की 'एक कंठ विषपाई' जैसी कृतियाँ महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। वस्तुत: ये रचनाएं उस दौर में भारतीय मनुष्य की चेतना में व्यापक स्तर पर घटित होने वाले मूल्य संक्रमण को उद्घासित करने में पर्याप्त सक्षम हैं।

उपरोक्त रचनात्मक रुझान में इस तथ्य को लक्षित किया जाना भी आवश्यक है कि नए कवियों में अधिकांश शिक्षित मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से आए। उनका संपर्क आधुनिक पाश्चात्यमय चिंतन पद्धतियों से होते रहने के कारण उनके दृष्टिकोण में उदारता और खुलेपन का समावेश तो हुआ, किंतु अनेक स्थलों पर पाश्चात्य चिंतन के कारण अतिरिक्त आकर्षण और स्वीकार का भाव भी प्रबल हुआ, जिससे भारतीय चिंतन परंपरा और मूल्यों के प्रति एक प्रकार के तिरस्कार और अवहेलना की भावना भी बढ़ी। परिणाम यह हुआ कि कई कवि पाश्चात्य चिंतन की चकाचौंध से अभिभूत हो स्वयं को आधुनिक कहलाने की चाह में भारत की समृद्ध चिंतन परंपरा के प्रति निषेध का एकतरफा रवैया अपनाते हुए अपनी जड़ों से दूर होने लगे। यह अवश्य है कि अतिवादी रूझानों को छोड़कर परंपरा और आधुनिकता, प्राचीन और नवीन के द्वंद्वात्मक संबंध को उसकी बहुपक्षीयता और अनेक-रूपता में आत्मसात कर संतुलित दृष्टिकोण अपनाया गया। जहाँ भारतीय अस्मिता के स्वरूप को पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर उद्घाटित करने के प्रयास हुए; वहाँ श्रेष्ठ कविता संभव हुई है।

***

रचनाकारों से विशेष अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी आदि एक से अधिक और कविता और लघुकथा दो से अधिक न भेजें।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र (हाई रेज्योलेशन फोटो) आदि भी भेज सकते है।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं वर्तनी को कृपया भली-भाँति जांच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

हिंदी के उद्भव में पुर्तगाली भाषा और संस्कृति का प्रभाव

शिव कुमार सिंह

" पुर्तगाल और भारत के 500 सालों का साझा इतिहास है। 1961 तक गोवा विधिवत रूप से पुर्तगाल का ही हिस्सा था तो भारत से, गोवा से जुड़ी यादें आज भी पुर्तगालियों की यादों में बसी हैं। बहुत से पुर्तगाली लोग जो भारतीय मूल के हैं, अपने बच्चों को गुजराती, कोंकणी, हिंदी सिखाने की कोशिश करते हैं। बहुतेरे पुर्तगाली युवा लोग हिंदी या अन्य भारतीय भाषाएँ सीखना चाहते हैं, क्योंकि अभी भी उनके बहुत सारे रिश्तेदार भारत में हैं और साल-दो साल में उनका भारत जाना होता है। "

सम्पर्क: आर्ट्स फैकल्टी, लिस्बन विश्वविद्यालय, पुर्तगाल, ई-मेल: shiv4singh@gmail.com

हिंदी भाषा के उद्भव की कहानी सैकड़ों सालों की रही है, और इन सालों के दौरान कई देसी, विदेशी भाषाओं ने हिंदी और भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है। इन्हीं गैर भारतीय उपमहाद्वीप की भाषाओं में से एक पुर्तगाली भाषा भी है, जिसने हिंदी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं को काफी प्रभावित किया है, साथ ही समृद्ध भी। हालांकि भारतीय भाषाओं के विकास और भाषाई बदलावों के क्षेत्र में पुर्तगाली भाषा के प्रभावों पर बहुत कम अनुसंधान हुए हैं, अतः इस लेख के माध्यम से इन्हीं प्रभावों को संक्षिप्त रूप में दर्शाने की कोशिश की गयी है।

आज पुर्तगाल पूरी दुनिया में उन देशों में से एक है, जो आर्थिक संकट से जूझ रहे हैं, और दुर्भाग्यवश, आजकल इसी कारण से पूरी दुनिया के अखबारों, समाचारों में छाया हुआ है। एशिया में बहुतेरे युवा पुर्तगाल को प्रसिद्ध फुटबाल खिलाड़ी क्रिस्तियानु रोनाल्दु की वजह से भी जानते हैं, लेकिन एक व्यक्ति जिसने पुर्तगाल का नाम दुनिया के इतिहास में हमेशा के लिए दर्ज करवा दिया है, वे हैं महान समुद्री नाविक, वास्को द गामा (1498-1524), जिन्होंने ना सिर्फ भारत और पुर्तगाल (यूरोप) के बीच समुद्री रास्ते की खोज की, बल्कि पंद्रहवीं शताब्दी के एक कुशाग्र राजनयिक के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्को द गामा ने 8 जुलाई 1497 को बलैं, पुर्तगाल से अपनी समुद्री यात्रा शुरू की और 20 मई 1498 को भारत, कालिकट के तट पर पहुँचे। वापस पुर्तगाल पहुँचने पर भारत से लाये सामान जैसे मसाले, कपास, कीमती पत्थर आदि पुर्तगाल और यूरोप के बाजारों में कई गुना ज्यादा दामों पर बिके और आने वाले समय में भारतीय माल सिर्फ पुर्तगाली ही यूरोप में ला सकते थे। इस प्रक्रिया ने पुर्तगाल को यूरोप में एक बहुत धनी और सशक्त देश बना दिया। वास्को द गामा की मृत्यु भी 1524 में कोचीन में ही हुई।

भारत के लिए समुद्री राह की खोज ने और वास्को द गामा के कुशल नेतृत्व ने भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की नींव रखी और यह हमेशा समुद्र तटीय क्षेत्रों से जुड़ा रहा, और इस प्रक्रिया को अंग्रेज इतिहासकार, प्रोफेसर चार्ल्स कॉक्सर ने 'समुद्री साम्राज्य' की संज्ञा दी है।

15वीं शताब्दी के बाद से आने वाली सदियों में 10 से 15 लाख की जनसंख्या वाला एक छोटा सा देश पुर्तगाल यूरोप का ही नहीं, बल्कि दुनिया की महाशक्तियों में से एक बनकर उभरा, जिसने ब्राजील से लेकर जापान तक अपना आधिपत्य स्थापित किया और साथ ही 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में व्यापार के क्षेत्र में अरबी भाषा के एकाधिकार को समाप्त करते हुए उसकी जगह पुर्तगाली भाषा को एशिया में व्यापार और संपर्क की भाषा के रूप में स्थापित किया। ऐसा हैमिल्टन ने 1727 में लिखी अपनी किताब में उल्लेखित किया है।

पुर्तगालियों ने हिंद महासागर और चीन सागर में व्यापारिक बंदरगाह और सैन्य ठिकाने स्थापित किए, और लगभग इस क्षेत्र से होने वाले सारे व्यापार पर उनका एकाधिकार स्थापित हुआ, और बिना उनको चुंगी दिए कोई भी नाव एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में नहीं जा सकती थी। पुर्तगालियों ने बहरीन, फारस (ईरान), मकाऊ (चीन), जापान और कई दर्जन जगहों पर पूरब में किलों की स्थापना की। 1510 में गोवा की जीत के साथ भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की नींव पड़ी और जल्द ही दमन और दीव के साथ-साथ मालाबार तट के क्षेत्रों पर पुर्तगाल का आधिपत्य स्थापित हो गया और भारत में यह आधिपत्य 1961 तक बरकरार रहा।

पुर्तगाली साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारत में ईसाइयत का प्रवेश हुआ, जिससे एक नए धर्म और एक और नई संस्कृति का भारत में जन्म हुआ।

पंद्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में यूरोपीय समुद्री खोज काल के महान लेखकों में से एक लुईश कामोएंश का जन्म भी इसी देश में हुआ और उन्होंने 'उश लुजियदश' नामक महान पौराणिक पुर्तगाली ग्रंथ की रचना की। यह पुर्तगाली ही नहीं विश्व साहित्य के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण महागाथा है। इस महागाथा में पुर्तगाल के इतिहास को गद्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस महागाथा में मुख्य रूप से ''वाश्कु द गामा'' की भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज के दौरान रास्ते में आयी कठिनाइयों और उनसे जूझने की घटनाओं का विवरण है।

पंद्रहवीं शताब्दी के बाद से आज तक पुर्तगाली साहित्य में भारत या भारतीय संदर्भ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद रहे हैं। उदाहरण के लिए, महान पुर्तगाली समकालीन, स्व. जूजे सरामागू (1922-2010, अजिंयागा) जिन्हें 1998 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया गया, उन्होंने ''अ भियाजे दू एलेफान्त 2008 (हाथी की यात्रा)'' लिखी। इसमें कहानी का एक पात्र भारतीय मूल का है।

पुर्तगाल में भारत/भारतीय संस्कृति

पुर्तगाल में मूलतः भारत से संबंधित गुजराती और पंजाबी समुदाय के बहुत लोग हैं। गुजराती समाज में ज्यादातर वो लोग है जो सालों पहले भारत से मोजाम्बिक गए और अन्य अफ्रीकी देशों में मूलतः व्यापार आदि के लिए बस गए थे। जब 1974 में मोजाम्बिक पुर्तगाल की दासता से स्वतंत्र हुआ तो अचानक वहाँ गृहयुद्ध के जैसे हालात पैदा हो गए, तो इस कारण बहुतेरे गुजराती मूल के लोगों ने पुर्तगाल का रुख किया और यहीं बस गए लेकिन आज भी उन्होंने अपनी संस्कृति और अपनी पहचान को बचाकर रखा हुआ है। भारतीय मूल के लोग हिंदी फिल्मों के माध्यम से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी तथा भारतीय संस्कृति से जुड़े हुए हैं। लिस्बन, जो कि पुर्तगाल की राजधानी है, यूरोप के अन्य राजधानियों की तुलना में एक छोटा शहर है, लेकिन पूरा शहर विभिन्न संस्कृतियों का समागम नजर आता है। एक छोटा शहर होने के बावजूद यहाँ हिंदू मंदिर, मस्जिदें और गुरूद्वारें हैं, और ईसाई बहुल देश होने की वजह से गिरिजाघरों की बात ही करने की जरूरत नहीं।

पुर्तगाल और भारत के 500 सालों का साझा इतिहास है। 1961 तक गोवा विधिवत रूप से पुर्तगाल का ही हिस्सा था तो भारत से, गोवा से जुड़ी यादें आज भी पुर्तगालियों की यादों में बसी हैं। बहुत से पुर्तगाली लोग जो भारतीय मूल के हैं, अपने बच्चों को गुजराती, कोंकणी, हिंदी सिखाने की कोशिश करते हैं। बहुतेरे पुर्तगाली युवा लोग हिंदी या अन्य भारतीय भाषाएँ सीखना चाहते हैं, क्योंकि अभी भी उनके बहुत सारे रिश्तेदार भारत में हैं और साल-दो साल में उनका भारत जाना होता है। बहुत लोग अभी भी शादी के लिए भारतीय कन्याएँ ही चाहते हैं। अतः, उपरोक्त तथ्य यह दर्शाते हैं कि पुर्तगाल में रह रही भारतीय मूल की युवा पीढ़ी भारतीय संस्कृति एवं भाषाओं के बारे में अगर बहुत ज्यादा नहीं तो कुछ जानकारी तो जरूर रखती है।

1961 से पहले गोवा चूंकि पुर्तगाली उपनिवेश था, अतः 1961 तक वहाँ की आधिकारिक भाषा भी पुर्तगाली थी, लेकिन आज भी गोवा, दमन और दीव में थोड़ी-बहुत पुर्तगाली बोली जाती है।

पुर्तगाल में हिंदी और भारतीय अध्ययन का इतिहास

पुर्तगाल में विश्वविद्यालय के स्तर में भारतीय संस्कृति की

शिक्षा-दीक्षा की शुरुआत का आधिकारिक श्रेय आदरणीय प्रो. जुजेलैइत द वासकोंसेलुश (उकान्या, 07-07-1858, लिस्बन, 17-05-1941) को है, जो लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में प्रोफेसर भी रहे। अपने समय में, वे न सिर्फ पुर्तगाल में वरन् पूरे यूरोप में पूरब (एशिया) की भाषा और संस्कृति के बारे में शोध करने वाले गिने-चुने विद्वानों में से एक हैं। उनकी मृत्यु के बाद लगभग 8 हजार किताबें लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय के पुस्तकालय को भेंट कर दी गयीं, जिनमें अधिकांश किताबें संस्कृत और भारतीय अध्ययन से संबंधित हैं।

लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में हिंदी

लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय में एशियन-अध्ययन में 2008 से स्नातक और 2012 में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम की शुरुआत हुई है, और हर साल तकरीबन 15-20 नए छात्र हिंदी विषय को चुनते हैं। इस समय कला-संकाय में हिंदी के कुल 30 छात्र हैं, और हिंदी तथा भारतीय संस्कृति के अध्ययन का नेतृत्व प्रो. शिव कुमार सिंह कर रहे हैं।

लिस्बन विश्वविद्यालय के कला-संकाय के भाषा-विभाग में पुर्तगाली भाषा के पठन-पाठन और शोध के अलावा बहुत सारी विदेशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था है। इस विभाग के अंतर्गत हिंदी के अलावा कई एशियाई भाषाएँ जैसे: अरबी, चीनी, जापानी, तुर्की, फारसी आदि पढ़ाई जाती हैं। हिंदी की शिक्षा शैक्षणिक सत्र 2008-09 से लगातार चल रही है। अभी तक भारतीय दूतावास के सहयोग से भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर 6 छात्र केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में हिंदी पढ़ने के लिए जा चुके है।

पुर्तगाल में हिंदी के पठन-पाठन की प्रमुख प्रेरणाएँ:

- भारत का विश्व बाजार में आर्थिक शक्ति के रूप में उदय,
- भारतीय भाषाओं एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान,
- योग और भारतीय दर्शन के प्रति आकर्षण,
- भारतीय शास्त्रीय कलाएँ (नृत्य, संगीत और गायन) और भारतीय फिल्में,
- अनुवाद सेवा और आयात-निर्यात

विदेशी भाषा के रूप में अन्य एशियाई भाषाओं जैसे चीनी, जापानी, कोरियाई आदि की अपेक्षा हिंदी सीखने वालों की संख्या कम होने का प्रमुख कारण व्यावसायिक प्रेरणा की मौजूदगी का नदारद होना है। साथ ही हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी को सिर्फ संसाधनों की ही नहीं वरन् संस्थागत सहयोग की भी नितांत आवश्यकता और अपेक्षा है। जब भी भारतीय संस्थानों के प्रतिनिधियों को अवसर मिले तो यथासंभव देश के अंदर और भारत के बाहर, विदेशों में सामाजिक और राजनयिक मंचों पर हिंदी का प्रयोग अवश्य किया जाए, अगर पूर्णत: संभव ना हो तो आंशिक रूप से ही सही, इन मंचों पर हिंदी का प्रयोग दर्शाया जाए। इस संदर्भ में यूरोप के देशों से सीख ली जा सकती है, जहाँ लगभग सभी देश सामाजिक और राजनयिक मंचों पर सदैव अपनी राजकीय भाषा का ही प्रयोग करते हैं।

***

विश्वव्यापी लोकप्रिय श्रीरामकथा

ललित शर्मा

श्रीरामकथा (रामायण) की विश्वव्यापी भूमिका प्रकाश में आ रही है और इसमें अनेक सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक धाराओं के साथ अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलनों की एक विराट धारा की भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके अंतर्गत अब तक एक दर्जन से अधिक देशों में 16 से अधिक रामायण सम्मेलन हो चुके हैं।

रामायण मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के आदर्श चरित्र की पावन कथा है जो अनेक युगों से एक महान प्रेरक शक्ति के रूप में भारतीय संस्कृति को आदर्शोन्मुख दिशा की ओर प्रवृत्त किए हुए है। आदिकवि वाल्मीकि ने जहां देवभाषा में इसका आदि संकलन किया वहीं गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के रूप में इस कथा को जन-जन के बीच लोकप्रिय बनाया। 'कंबन रामायण' के रूप में इसने दक्षिण भारत में लोकप्रियता पाई। इस तरह नाना भाषाओं में इस पावन श्रीरामकथा के भाषांतरण के साथ भारतवर्ष में यह इतनी लोकप्रिय हुई है कि यहाँ 'घर-घर में बसे हैं श्रीराम' की उक्ति चरितार्थ होती है।

श्रीरामकथा अर्थात् रामायण कथा की अपार लोकप्रियता का कारण इसमें निहित जीवन की समग्रता का बोध है, जिसमें पाठक, श्रोता एवं आदर्श तथा व्यवहार का, लौकिकता एवं अलौकिकता का काम, अर्थ एवं धर्म, मोक्ष का ज्ञान और भक्ति का सुंदर संयोग मिलता है। जीवन के हर पक्ष को छूते इसके उदात्त आदर्श पात्रों के प्रेरक प्रसंगों में दिशा निर्धारक दृष्टि सहज की प्राप्त हो जाती है। अतिपावन श्रीरामकथा वस्तुत: मानवीय जीवन के समस्त पाप-ताप, दु:ख दारिद्रय एवं संकट-कष्टों को हरने वाली है और दशहरे के पावन पर्व पर तो इसकी महत्ता और बढ़ जाती है। दशहरा, असुरता के प्रतीक रावण के वध, संस्कृति की प्रतीक माता सीता की स्वतंत्रता के साथ अधर्म के नाश व धर्म की स्थापना का विराट उद्घोषक पर्व है। नवरात्रा की शक्तिपूजा के बाद इस पर्व की स्थिति इसे और भी विशिष्ट रूप प्रदान करती है। इसे दशविध पाप को हरण करने वाली तिथि के साथ दशजन्मकृत पाप को हरण करने वाली तिथि भी माना गया है। 'दशहरा' नाम के अर्थ में वस्तुत: यही मर्म निहित है।

महर्षि शुक्राचार्य कृत शुक्रनीति (3, 7-8) के अनुसार निम्न दशविध पाप हैं 1. हिंसा-किसी की हत्या या किसी को कष्ट पहुंचाना, 2. स्तेय-चोरी करना, 3. अन्यथाकाम-अवैध मैथुन, 4. पैशुन्य-चुगलखोरी, 5. निष्ठुर भाषण-कटुवचन, 6. अनृत-मिथ्याकथन, 7. भेदवार्ताव्यापार-भेदवार्ता से हृदय विदारण, 8. अविनय-विनयहीनता दिखाना, 9. नास्तिकता-आस्थाहीनता, निरीश्वरता तथा 10. अवैध आचरण-शास्त्र विरुद्ध आचरण।

सम्पर्क: 'अनहद' जैकी स्टूडियो, 15 मंगलपुरा, झालावाड़-326001 (राज.), मो: 09829896368

देखा जाये तो वास्तव में पाप ही जीवन को दु:ख-कष्टमय, रोग शोकमय एवं दरिद्र-संतापमय बनाने का मूल कारण है। दशहरा में भक्तिभाव से पूर्ण किया गया श्रीरामकथा का श्रवण, दर्शन एवं पारायण मानव को इस दशविध पापों से मुक्त करने वाला है। इसके साथ ही मानव मात्र की लौकिक समृद्धि तथा आंतरिक शांति-संतोष एवं समग्र विकास का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। श्रीरामकथा की इस अद्भुत विशेषता के कारण ही यह भारतवर्ष भर में ही नहीं, बल्कि विश्व के हर कोने में लोकप्रिय होती गई और आज इसका स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय विस्तार लिए हुए है। दक्षिण पूर्व एशिया में थाईलैंड, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि से लेकर मध्य एशिया, चीन तक व यूरोप, रूस से लेकर फ्रांस, इंग्लैंड तथा अमेरिका में इसके विश्वव्यापी विस्तार के दिग्दर्शन किए जा सकते हैं।

दक्षिण पूर्व एशिया में श्रीरामकथा किस कदर जनजीवन में व्याप्त है व यहाँ के सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित कर रही है, यह अद्भुत एवं आश्चर्यजनक है। हालांकि इसमें भारत के अतीतकालीन उन गौरवशाली क्षणों की याद आती है, जब यह समूचा क्षेत्र भारत का सांस्कृतिक उपनिवेश था। विश्व के इस भू-खंड ने श्रीराम और उनके देश की संस्कृति को भली-भांति समझा और उसकी महत्ता स्वीकार की है। थाईलैंड इसका जीवन्त उदाहरण है। इसके सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में श्रीराम पूर्णत: समरस हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इस देश में कहीं भी श्रीराम और बुद्ध के बीच कोई पृथकता की रेखा नहीं है। यहाँ के जीवन में दोनों का सुंदर सहअस्तित्व है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण बैंकाक स्थित शाही बुद्ध मंदिर है, जिसमें नीलम की मूर्ति है। यह मंदिर पूरे देश में बहुत प्रसिद्ध है तथा दूर-दूर से लोग इसके दर्शनार्थ आते हैं। मंदिर की दीवारों पर संपूर्ण श्रीरामकथा चित्रित है। इस देश की अपनी रामायण है करायकियेन, जिसके रचयिता थे नरेश राम प्रथम। उन्हीं के वंश के नरेश राम नवम्, वर्तमान में देश के शासक हैं। थाईलैंड में किसी एक स्थल पर श्रीराम के भव्य दर्शन करने हों तो यहाँ के बैंकांक स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय में किए जा सकते हैं। यहाँ के संग्रहालय में प्रवेश करते ही धनुर्धारी श्रीराम के दर्शन होते हैं। श्रीरामकथा यहाँ के लोकजीवन में इतनी रची बसी है कि थाईवासियों का यहाँ तक विश्वास है कि रामायण की घटनाएं उनके देश में ही घटी। आश्चर्य की बात नहीं कि थाईलैंड में एक अयोध्या (अछुत्या) और लवपुरी (लोयबुरी) भी है। थाई जीवन में श्रीराम की लोकप्रियता की जड़ें कितनी गहरी हैं, इसके प्रमाण यहाँ के शास्त्रीय नृत्य हैं जिसमें श्रीरामकथा के दर्जनों प्रसंग प्रदर्शित किए जाते हैं और वे नृत्य आज भी थाईलैंड में लोकप्रिय हैं।

थाईलैंड की तरह कंबोडिया में भी श्रीराम के महत्व का जीता-जागता प्रमाण है अंगकोरवाट, जो दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा प्रतीक है। इसका निर्माण बारहवीं सदी में सूर्यवर्मन द्वितीय ने कराया था। इस मंदिर में कई भाग हैं, अंगकोरवाट, अंगकोरथाम, बेयोन आदि। अंगकोरवाट में श्रीरामकथा के अनेक प्रसंग दीवारों पर उत्कीर्ण हैं। इसी तरह लाओस और बर्मा जैसे बौद्धों के जीवन में भी श्रीरामकथा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसे नृत्य नाटकों और छायाचित्रों के माध्यम से देखा जा सकता है। यहाँ के बौद्ध मंदिरों में इनके प्रदर्शन होते हैं।

इंडोनेशिया में श्रीरामकथा (रामायण) की लोकप्रियता उल्लेखनीय है। यहाँ चाहे बाली का हिंदू हो या जावा-सुमात्रा का मुसलमान, दोनों ही श्रीराम को अपना राष्ट्रीय महापुरुष और श्रीराम साहित्य तथा श्रीराम संबंधी ऐतिहासिक अवशेषों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर समझता है। जोगजाकर्ता से लगभग 25 किमी की दूरी पर स्थित प्राबंनान का मंदिर इस बात का साक्षी है, जिसकी प्रस्तर भित्ती पर संपूर्ण श्रीरामकथा उत्कीर्ण है। बाली में श्रीरामलीला या श्रीरामकथा से संबंधित लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। इस द्वीप का वातावरण पूर्णत: श्रीराममय है।

मलेशिया में रामायण मनोरंजन का अच्छा माध्यम है। यहाँ चमड़े की पुतलियों द्वारा रात्रि में रामायण के प्रसंग दिखाए जाते हैं। यहाँ की रामायण का नाम है हेकायत सेरीरामा, जिसमें श्रीराम को विष्णु का अवतार माना गया है। हालांकि इस पर इस्लाम का प्रभाव भी स्पष्ट है। सिंहल द्वीप में कवि नरेश कुमार दास ने छठी शताब्दी में जानकी हरण काव्य की रचना की थी। यह संस्कृत ग्रंथ है। बाद में इसका सिंहली भाषा में अनुवाद हुआ। आधुनिक काल में जान डीसिल्वा ने रामायण का रूपांतरण किया है।

रामायण का विस्तार जहां दक्षिण पूर्व एशिया में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के रूप में हुआ है, वहीं यूरोप एवं अमेरिका में इसकी पृष्ठभूमि प्रमुखत: साहित्यिक रही है। यूरोपीय देशों व अमेरिका के विश्वविद्यालयों में इसकी पहुंच का माध्यम भारतवंशी नहीं अपितु स्थानीय विद्वान रहे, जिन्होंने प्राच्य विद्या या भारतीय विद्या के रूप में संस्कृत का पठन-पाठन किया। इन्होंने रामायण

को आध्यात्मिक ग्रंथ की बजाय, एक साहित्यिक ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया। हालांकि इसके आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों से वे अछूते न रह सके। देवभाषा संस्कृत के पश्चिमी देशों के विश्वविद्यालयों में स्थान मिलने के कारण वाल्मीकि रामायण से इनका परिचय शताब्दियों पूर्व ही हो गया था, किंतु रामचरितमानस के प्रति पश्चिमी देशों का आश्चर्यजनक रूझान मुख्यत: पिछली शताब्दी से ही शुरू होता है, जिसका अनुवाद अभी तक लगभग सभी महत्वपूर्ण विश्वभाषाओं में हो गया है और अभी भी हो रहा है।

फ्रांसीसी विद्वान गार्सादतासी ने 1839 ई. में रामचरितमानस के सुंदरकांड का अनुवाद किया था। फ्रांसीसी भाषा में मानस के अनुवाद की इस धारा को पेरिस विश्वविद्यालय के श्री वादिविल ने आगे बढ़ाया। अंग्रेजी में रामचरित मानस का पद्यानुवाद पादरी एटकिंस ने किया जो बहुत लोकप्रिय है। इसका प्रकाशन हिंदुस्तान टाईम्स में देवदास गांधी ने कराया था। इसी प्रकार के अनुवाद जर्मन, सोवियत संघ आदि में हुए। रूसी भाषा में मानस का अनुवाद करके अलेक्साई वारान्निकोव ने भारत-रूस की सांस्कृतिक मैत्री की सबसे सशक्त आधारशिला रखी। उनकी समाधि पर मानस की अर्द्धाली 'भलो भलाहिह पै लहै' लिखी है, जो सेंट पीटर्सबर्ग के उत्तर में उनके गांव कापोरोव में स्थित है। चीन में वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस दोनों का पद्यानुवाद हो चुका है। डच, जर्मन, स्पेनिश, जापानी आदि भाषाओं में भी श्रीरामकथा (रामायण) का अनुवाद हो चुका है।

शोधग्रंथों के माध्यम से भी यह धारा पश्चिम में आगे बढ़ी है। हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम शोधग्रंथ इटली निवासी डॉ. टेसीटोरी का माना जाता है, जिस पर फ्लोरेंस विश्वविद्यालय ने उन्हें 1910 ई. में डॉक्ट्रेट की उपाधि दी थी। विषय था, 'मानस और वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन' दूसरा शोधग्रंथ जे. एन. कार्पेण्टर ने 'थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास' शीर्षक के तहत लंदन विश्वविद्यालय में 1918 ई. में प्रस्तुत किया था।

इस तरह श्रीरामकथा (रामायण) की विश्वव्यापी भूमिका प्रकाश में आ रही है और इसमें अनेक सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक धाराओं के साथ अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलनों की एक विराट धारा की भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके अंतर्गत अब तक एक दर्जन से अधिक देशों में 16 से अधिक रामायण सम्मेलन हो चुके है। दिनांक 5-9 दिसंबर सन् 2011 ई. में थाईलैंड के शासक 'रामनवम्' के 7वें चक्रीय वर्षगांठ के उत्सव पर बैंकाक में अंतर्राष्ट्रीय रामायण उत्सव का आयोजन किया गया था। भारत से शुरू होकर कई विश्व परिक्रमाएं कर चुकी यह सम्मेलन श्रृंखला एक विश्व सांस्कृतिक मंच के रूप में उभरकर आई है। फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड व हालैंड को श्रीरामकथा ने ही भारतवर्ष से अब तक जोड़े रखा है। यह कार्य किया है हमारे अप्रवासी भाईयों ने जो 150 से अधिक वर्ष पूर्व श्रीरामकथा लेकर एक मजदूर के रूप में गए थे।

श्रीरामकथा की साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विशेषताएं इस कथा को अपने-अपने ढंग से विश्वव्यापी लोकप्रियता दिलाने में सहायक सिद्ध हो रही हैं। हर धारा का व्यक्ति, परिवार से लेकर समाज, राष्ट्र एवं विश्व के आध्यात्मिक उत्थान, संस्कार एवं सांस्कृतिक निर्माण संदर्भ में अपनी भूमिका निभाता है। भारत के पावन पर्व के संदर्भ में हर स्तर पर इसके पारायण की महत्ता कुछ विशेष हो जाती है। नवरात्र में इसका किया गया श्रद्धापूर्वक विधिवत परायण या कथा श्रवण दस पाप-तापों के हरण के साथ दशहरे के नाम की सार्थकता सिद्ध करने वाला है। अत: श्रीरामकथा की इस विशेषता से किसी को भी वंचित नहीं रहना चाहिए। इसमें मानवीय जीवन को जीने की वे सारी विशेषताएं हैं जो प्रत्येक संसारवासी के लिये आवश्यक है।

***

स्मृतिशेष साहित्यकार मनु शर्मा

प्रो. राममोहन पाठक

"मनु शर्मा का जीवन-संघर्ष भी एक साहित्यकार के संघर्ष की अनूठी गाथा है। 90 वर्षीय मनु शर्मा ने अपने वाराणसी निवास पर 8 नवंबर 2017 को जब अंतिम सांसें लीं तो काशी और हिंदी साहित्य परंपरा की विशिष्ट विधा की सांसें भी ठिठक सी गईं। 1928 में शरद पूर्णिमा (आश्विन पूर्णिमा) को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद, शहजादपुर (अब अंबेडकर नगर) जिले में जन्मे मनु शर्मा ने पौराणिक उपन्यासों की रचना को 'लेखक का परकाया प्रवेश' माना और तभी तो उन्होंने कृष्ण, कर्ण, द्रौपदी, गांधारी के चरित्र के मर्म को समझा और उसमें गहरे तक डूब कर इन चरित्रों की रचना सृष्टि को औपन्यासिक कलेवर प्रदान किया।"

सम्पर्कः 11, कबीर मठ, सी-23/5, कबीर चौरा, वाराणसी-221001, मो: 09415201333

संस्कृति, परंपरा, पुराण—इतिहास और पौराणिक चरित्रों के अनूठे भाष्यकार, साहित्यकार मनु शर्मा का अवदान भारतीय साहित्य का एक अनूठा अध्याय है। उनके निधन से जो साहित्यिक रिक्तता उपजी है, वह एक अपूरणीय क्षति है।

मनु शर्मा ने अपने रचनाकाल के लगभग पचास वर्षों में प्रभूत साहित्य सृजन किया। पौराणिक चरित्रों कृष्ण, कर्ण, गांधारी, द्रौपदी, द्रोण की आत्मकथाओं के रचनाकार मनु शर्मा ने अपनी रचनाओं के सार्वकालिक महत्व को रेखांकित करते हुए कहा था—'मैं भविष्य में डायनासोर के जीवाश्म की तरह पढ़ा जाऊंगा।' वस्तुतः उनकी यह आत्मस्वीकृति साहित्य जगत में सार्थक और एक रचनाकार के मनोभावों तथा आत्मविश्वास की सजग अभिव्यक्ति है।

भारतीय परंपरा में पुराण, इतिहास और संस्कृति के संदर्भों के अद्वितीय रचनाकारों में मनु शर्मा मौलिक चिंतन और व्याख्या के लिए हिंदी साहित्यजगत में हमेशा प्रासंगिक इसलिए भी रहेंगे कि उन्होंने कृष्ण, कर्ण, द्रौपदी, गांधारी और द्रोण आदि मिथकीय चरित्रों को वर्तमान में प्रासंगिकता से जोड़कर अधुनातन साहित्यिक व्याख्या दी। उनके उपन्यासों में 'कृष्ण की आत्मकथा'-(3 खंड) और 'द्रौपदी की आत्मकथा' विशेष चर्चित और पठनीय कालजयी कृतियां हैं। साहित्यजगत में उनके अन्य उपन्यासों तथा कहानियों में 'मरीचिका', 'मनु शर्मा के दो उपन्यास', 'गांधी लौटे', 'तीन प्रश्न', 'अभिशप्त कथा', 'शिवानी का आशीर्वाद', 'मुंशी नवनीत लाल की कहानी', 'के बोले मां तुमि अबले', 'लक्ष्मण रेखा' और 'एकलिंग का दीवान' कालजयी कृतियों के रूप में मान्य है। 'राणासांगा', 'छत्रपति', 'पोस्टर उखड़ गया' (कहानी संग्रह), 'महात्मा और दीक्षा' के अलावा काव्यसंग्रह—'खूंटी पर टंगा बसंत' एवं निबंध संग्रह—'उसपार का सूरज' उनकी ऐतिहासिक महत्व की कृतियां हैं। हिंदी में पौराणिक संदर्भों और कथाओं को लेकर आत्मकथात्मक उपन्यास मनु शर्मा का मौलिक साहित्य शिल्प था। कृष्ण-अर्जुन, द्रोण, कर्ण और द्रौपदी जैसे स्त्री पात्रों के द्वंद्व को बखूबी उकेरते उनके उपन्यास वर्तमान को परंपरा

इतिहास और पुराणों से जोड़ते हैं। पाठकों के लिए पौराणिक संदर्भों की तार्किक और मानव जीवन पर आधारित प्रवृत्तियों की समग्र विवेचना की उनकी लेखन शैली अत्यंत विशिष्ट और हिंदी साहित्य परंपरा की अनूठी थाती है।

मनु शर्मा का जीवन-संघर्ष भी एक साहित्यकार के संघर्ष की अनूठी गाथा है। 90 वर्षीय मनु शर्मा ने अपने वाराणसी निवास पर 8 नवंबर 2017 को जब अंतिम सांसें लीं तो काशी और हिंदी साहित्य परंपरा की विशिष्ट विधा की सांसें भी ठिठक सी गईं। 1928 में शरद पूर्णिमा (आश्विन पूर्णिमा) को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद, शहजादपुर (अब अंबेडकर नगर) जिले में जन्मे मनु शर्मा ने पौराणिक उपन्यासों की रचना को 'लेखक का परकाया प्रवेश' माना और तभी तो उन्होंने कृष्ण, कर्ण, द्रौपदी, गांधारी के चरित्र के मर्म को समझा और उसमें गहरे तक डूब कर इन चरित्रों की रचना सृष्टि को औपन्यासिक कलेवर प्रदान किया। कर्ण की मनोवेदना, द्रौपदी की स्त्री-पीड़ा और कृष्ण के मार्मिक अंतर्द्वंद्व को पुराण के संदर्भों से इतर उकेरते हुए साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले मनु शर्मा ने उन पात्रों की पीड़ाओं के पोर-पोर को शब्दों में जीवंत किया। पौराणिक पात्रों के मनोवैज्ञानिक पक्षों और स्वरों से स्वयं को एकाकार करते हुए उन्होंने अभिव्यक्ति दी। यह उनका अत्यंत विशिष्ट और ऐतिहासिक अवदान है।

हनुमान प्रसाद शर्मा काशी (वाराणसी) में गरीबी से संघर्ष करते हुए जीविकोपार्जन के लिए आये थे। सड़क किनारे फुटपाथ पर गमछा बेचा, मूंगफली बेची। सड़क किनारे लैम्पपोस्ट की रोशनी में पढ़ाई की। निरंतर-अनंत जिजीविषा और संघर्ष के परिणामस्वरूप सड़क पर गमछे की दुकान पर विख्यात व्यंग्यकार बेढब बनारसी उनके पास पहुंचे। हनुमान प्रसाद शर्मा का साहित्यिक नाम 'मनु शर्मा' बेढब बनारसी के सान्निध्य में गढ़ा गया। बेढब जी फुटपाथ से हाथ पकड़ कर अपने 'मनु' को अपने डी ए वी कॉलेज ले गये, जहां वे प्रिंसिपल थे। मनु को उन्होंने चतुर्थ श्रेणी की नौकरी दी और पुस्तक सेवक के रूप में काम लिया। यहीं 'किताबों की गंगाधारा में अवगाहन' का उन्हें मौका मिला और पुस्तकालय के रैक और आलमारियों के बीच से एक लेखक का जन्म हुआ। पहले हनुमान प्रसाद शर्मा नाम से लेखन प्रारंभ किया। पर इस नाम से उनके लेखन को प्रशंसकों, पत्र-पत्रिकाओं ने महत्व नहीं दिया। बेढब जी की सलाह काम कर गई—वे मनु शर्मा बन गये।

मनु शर्मा की पहली रचना 'पाखंड खंडिनी पताका' पत्रिका में 1945 में छपी। पहली कविता 'निराला' की पत्रिका 'मतवाला' में छपी। पहली कहानी 'हवा का रुख' को मासिक पत्रिका 'आंधी' ने महत्व के साथ प्रकाशित किया। मनु शर्मा ने उपन्यास, कहानी, कविता, निबंध, हास्य-व्यंग्य आदि अनेक विधाओं में रचना की। ललित निबंध भी उनकी प्रिय रचना-विधा थी। उनकी कृति-'कृष्ण की आत्मकथा' के लोकार्पण अवसर पर पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा था—'इस रचना को पढ़ते हुए इतना खो गया कि कई काम भूल ही गया। पहली बार कृष्ण को इतना व्यापक आयाम दिया गया है। कृष्ण के मुंह से क्या कहलवाया जाय यह आसान काम नहीं था।'

इन पंक्तियों के लेखक को उनके दो उपन्यासों को दैनिक पत्र में श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित करने के दौरान प्राय: तीन वर्षों तक निरंतर संपर्क में रहने का अवसर मिला था। वे मानते थे—महाभारत मेरे चिंतन और सृजन का अक्षय स्रोत रहा है। गांधी के महत्व को वैश्विक, सार्वदेशिक और सार्वकालिक मानते हुए उन्होंने 'गांधी लौटे' उपन्यास का सृजन किया और गांधी चिंतन की राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय परंपरा—धारा को नया साहित्यिक आयाम दिया। मनु शर्मा ने बताया था कि उनके नाना गणेशदत्त जी का भारतेंदु हरिशचंद्र से गहरा रिश्ता था। भारतेंदु ने नाना जी को लिखने वाली एक डेस्क दी थी, जिसे नाना जी ने उन्हें दे दिया था। यह डेस्क मनु शर्मा के पिता स्वर्गीय रघुनाथ प्रसाद शर्मा के निर्देशानुसार आज भी घर में सुरक्षित है।

पिछली 89वीं वर्षगांठ पर मेरी मनु शर्मा से वार्ता हुई थी। मैंने 'मनु की आत्मकथा' यानी अपनी आत्मकथा को उपन्यास में पिरोकर लिखने का आग्रह किया था। इस पर उन्होंने कहा—मैंने बहुत काम किया। अब अशक्तता है, यह काम करेगा कौन? मैंने कहा था—मुझे बुला लीजियेगा, मैं करूंगा। इसके बाद न उन्होंने मुझे बुलाया, न मैं गया। उन्हें ईश्वर ने बुला लिया। यह आत्मकथा साहित्यिक रूपाकार न ग्रहण कर सकी। एक अभिमान रहित रचनाकार मनु शर्मा में, संभवत: बेढब बनारसी से निकट होने का प्रभाव था, शालीन हास-परिहास की झलक मिलती थी।

रचनाधर्मी मनु शर्मा को जीवनकाल में अनेक सम्मान मिले पर वे इन सम्मानों से 'कहीं अधिक बड़ा और सबसे बड़ा सम्मान' अपने पाठकों के स्नेह और आर्शीर्वाद को मानते रहे। राष्ट्रीय

अलंकरण–पद्म श्री, मानद डी. लिट्, उत्तर प्रदेश का शिखर सम्मान–यशभारती सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का–लोहिया सम्मान, केंद्रीय हिंदी संस्थान का–सुब्रह्मण्यम भारती पुरस्कार, मध्य प्रदेश का सर्वोच्च मैथिलीशरण गुप्त सम्मान उन्हें प्रदान किये गये।

व्याख्याकारों और समीक्षकों की स्वीकृत मान्यता है—मनु शर्मा की यह दुर्लभ विशेषता है कि पौराणिक चरित्रों को आधुनिक संदर्भों में व्याख्यायित करते हुए भी उन्होंने उन चरित्रों की मौलिकता से कथाशैली में कोई छेड़छाड़ या समझौता नहीं किया। वे मानते थे कि महाभारत मेरी सर्जना की शक्ति और अक्षय स्रोत है। पौराणिक मिथक मेरे जीवन का स्रोत हैं, वे मानते थे 'महाभारत पढ़ने के समय कृष्ण का चरित्र इतना विविध, विस्तृत और बहुआयामी है कि आधुनिक जिंदगी उसमें किसी न किसी रंग–रूप में अपनी छाया का दर्शन कर सकती है।

मनु शर्मा साहित्यिक पत्रकारिता के सेतु पुरुष थे। 'आज' और 'जनवार्ता' पत्रों के लिए उन्होंने वर्षों लेखन किया और 'आज' में धारावाहिक प्रकाशन के लिए अपने तीन उपन्यास बिना किसी शर्त के सहर्ष सौंप दिये थे।

मनु शर्मा काशी की रचना परंपरा के प्रतीक पुरुष थे। भारतीय–पौराणिक, ऐतिहासिक संदर्भों के कालजयी व्याख्याता इस रचनाकार ने पांच–छह: दशक लंबे अपने रचनाकाल में जो

सृजन किया, वह रचना के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले नई पीढ़ी के रचनाकारों के लिए आदर्श प्रेरणास्रोत है और आगे भी रहेगा।

***

हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद

डॉ. विभा खरे

ध्यानचंद के खेल में इतनी तीव्रता थी, गति थी कि 1934 में ऑस्ट्रेलिया-न्यूजीलैंड के दौरे के दौरान भारतीय टीम ने कुल 48 मैच खेले थे। और इस दौरान पूरी टीम द्वारा किए गए 584 गोलों को विशाल संख्या में ध्यानचंद द्वारा किए गए अकेले 200 गोल थे। गोलों की इतनी बड़ी तादाद देखकर उस समय के क्रिकेट खिलाड़ी सरताज ऑस्ट्रेलिया निवास बैडमेन इस संख्या पर आश्चर्यचकित होकर बोले थे कि ये किसी क्रिकेट खिलाड़ी द्वारा बनाए गए दोहरे शतक की संख्या तो नहीं है।

सम्पर्क: जी-9, सूर्यपुरम्, नंदनपुरा, झांसी-284003,
ई-मेल:vibhakhare12345@gmail.com

बुंदेली धरा झांसी नगरी यूं तो कई महान विभूतियों के नामों से जानी जाती है-प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की योद्धा वीरांगना महारानी लक्ष्मी बाई, राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त, प्रसिद्ध उपन्यासकार व साहित्यकार डॉ. वृंदावन लाल वर्मा। भारतीय इतिहास में इन्हीं महान लोगों की शृंखला में एक और ऐसा नाम है जिसे आज भी भारत में ही नहीं बल्कि सारे विश्व में हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद के नाम से जाना जाता है।

विश्व हॉकी में भारतीय पताका फहराने वाले विश्व प्रसिद्ध हॉकी के जादूगर स्व. मेजर ध्यानचंद का जन्म इलाहाबाद में 29 अगस्त, 1905 को हुआ था। जन्म के कुछ समयोपरांत ही इनका पूरा परिवार झांसी में आकर बस गया था। लगभग छह सात वर्ष की आयु में इन्होंने छड़ी व गेंद से अपनी हॉकी की शुरुआत की। ध्यानचंद जी के पिता श्री रामेश्वर सिंह झांसी में फौज में सूबेदार के पद पर तैनात थे। बचपन में ही ध्यानचंद को हॉकी की ओर आकर्षित होते देख उन्होंने ध्यानचंद को आगे हॉकी खेलने की प्रेरणा दी। अपने फौजी पिता की प्रेरणा पाकर ध्यानचंद ने हॉकी खेल में विशेष रुचि ली और आहिस्ता-आहिस्ता हॉकी खेल में पारंगत हो गए। मजे की बात यह रही कि एक हॉकी मैच के दौरान ध्यानचंद के खेल से प्रभावित होकर एक अंग्रेज ने इन्हें फौज में भर्ती के लिए प्रेरित किया। और फिर ध्यानचंद 1922 में 41 पंजाब रेजीमेंट में एक सिपाही की हैसियत से भर्ती हो गए, कालांतर में 41 पंजाब रेजीमेंट टूटी और वह 21 जाट रेजीमेंट में आ गए।

मेजर ध्यानचंद की पहली विदेश यात्रा

सन् 1926 में ध्यानचंद को न्यूजीलैंड जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, चूंकि ध्यानचंद की आर्थिक स्थिति अत्यंत नाजुक थी, विदेश जाने के लिए उनके पास पर्याप्त संसाधन नहीं थे। लेकिन ध्यानचंद ने इस समस्या का समाधान निकाल ही लिया, सेना से मिले हुए पुराने गर्म ओवरकोट और गर्म शर्ट एवं पैंट इकट्ठा किए, सेना के ही जूते तथा फलालेन की सस्ती कमीजें बनवायी और कंबल बांध कर विदेशी दौरे की तैयारी कर ली। न कोई झिझक, न कोई दिखावा। मां ने उन्हें समझाया कि इतने कम गर्म कपड़ों से विदेश में काम नहीं चलेगा तो ध्यानचंद ने उनकी एक न सुनी और हंसते हुए बोले—मां गर्मी खिलाड़ी के शरीर

में होनी चाहिए। गर्म कपड़ों में नहीं... सर्दी का सामना करने के लिए इतने कपड़े मेरे लिए काफी हैं...

हॉकी खेलने के लिए भारत मां का सच्चा खिलाड़ी अत्यंत ही साधारण पोशाक और मिलिट्री के कुछ सामान के साथ अपने देश का नाम रोशन करने निकल पड़ा।

इस पहले विदेशी दौरे में भारतीय टीम ने पांच मैच खेले सभी जीते। कुल 60 गोलों में से अकेले ध्यानचंद ने 35 से अधिक गोल दागे तथा अपने हॉकी जीवन में 400 गोल का एक अनोखा कीर्तिमान स्थापित किया।

हॉकी के साथ ध्यानचंद के यादगार का पल

सन् 1928 में कप्तान जयपाल सिंह के नेतृत्व में भारतीय हॉकी टीम ओलम्पिक में हिस्सा लेने के लिए एम्सटर्डम गयी। ओलम्पिक से पूर्व खेले गए अभ्यास मैचों में इस टीम ने 11 मैच खेलकर कुल 73 गोल किए जिसमें ध्यानचंद ने 32 गोल अपने खाते में डालकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया, यहीं से उन्हें हॉकी के जादूगर के नाम से पहचाना जाने लगा। इसके बाद 13 मई 1928 का दिन भारतीय हॉकी के लिए और स्वयं ध्यानचंद के लिए यादगार दिन था, क्योंकि भारतीय खेल इतिहास में यह पहला मौका था जब भारत ने ओलम्पिक में पदार्पण किया। ओलम्पिक के पहले ही मैच में भारत ने आस्ट्रेलिया को 6-0 के अंतर से हराया। ध्यानचंद ने अकेले 4 गोल किए। बेल्जियम को 9-0, डेनमार्क को 5-0, स्विटजरलैंड को 6-0 से हराकर भारत ने गौरव के साथ फाइनल में प्रवेश किया। और इसी खिताबी मैच में हालैंड को 3-0 से हरा कर पहला ओलम्पिक स्वर्ण पदक जीता। इस जीत की खबर सारे विश्व में गूंजी और भारत भर में खुशियां मनाई गई, वास्तव में इस ऐतिहासिक रोमांचक जीत का मुख्य हीरो ध्यानचंद ही थे।

इसके बाद 1932 में लांस एंजल्स ओलम्पिक में भाग लेने के लिए भारतीय टीम चुनी गई। जिसमें ध्यानचंद के अलावा उनके भाई रूप सिंह भी थे। भारत ने इस ओलम्पिक का पहला ही मैच जापान को 11-0 से हराकर जीता। ध्यानचंद ने 4 और रूप सिंह ने 3 गोल किए। 11 अगस्त को खेले गए इस प्रतियोगिता के अंतिम खिलाड़ी मैच में भारत ने अमेरिका को 24-1 के विशाल अंतर से पराजित कर दूसरी बार ओलम्पिक स्वर्ण पदक जीतने के साथ-साथ एक ऐसा विश्व रिकार्ड स्थापित किया जो आज तक तोड़ा नहीं जा सकता। इस खिताबी मैच में ध्यानचंद ने 10 व रूप सिंह ने 8 गोल किए। इस खिताबी मैच पर टिप्पणी करते लांस एंजलिस के एक अखबार में लिखा था—भारतीय दल ध्यानचंद और रूप सिंह के रूप में एक ऐसा तूफान लाया है जिसने अमेरिकी खिलाड़ियों को नचा-नचा कर मैदान के बाहर ला पटका और खाली मैदान पर भारतीय टीम ने मनचाहे गोल किए।

1928 से 1936 तक तीन बार ओलम्पिक हॉकी प्रतियोगिता में भारत को सोने का तमगा दिलाने के बाद तो ध्यानचंद की पूरे विश्व में जैसे धूम ही मच गयी थी। खचाखच भरे स्टेडियम में लोग सिर्फ ध्यानचंद को देखने आते थे। लोग संदेह व्यक्त करने लगे कि वो हॉकी में चुंबक जैसी कोई चीज लगाता है, लेकिन हॉकी के इस जादूगर ने अपने विपक्षी खिलाड़ी की हॉकी से खेलकर एक दर्जन गोल करते हुए विदेशियों के सारे भ्रम तोड़ डाले।

ध्यानचंद के खेल में इतनी तीव्रता थी, गति थी कि 1934 में ऑस्ट्रेलिया-न्यूजीलैंड के दौरे के दौरान भारतीय टीम ने कुल 48 मैच खेले थे। और इस दौरान पूरी टीम द्वारा किए गए 584 गोलों को विशाल संख्या में ध्यानचंद द्वारा किए गए अकेले 200 गोल थे। गोलों की इतनी बड़ी तादाद देखकर उस समय के क्रिकेट खिलाड़ी सरताज ऑस्ट्रेलिया निवास बैडमेन इस संख्या पर आश्चर्यचकित होकर बोले थे कि ये किसी क्रिकेट खिलाड़ी द्वारा बनाए गए दोहरे शतक की संख्या तो नहीं है। ध्यानचंद जी के बारे में ऑस्ट्रेलियन प्रेस की टिप्पणी ने तो पूरे विश्व में तहलका मचा दिया था कि देखने में सामान्य सा दिखने वाला खिलाड़ी एक सक्रिय क्रिस्टल की तरह रहता है और किसी भी परिस्थिति से निपटने की उसमें जन्मजात क्षमता है। उसके पास बाज की आंखें और चीते की गति है।

जब दी ध्यानचंद ने तिरंगे को सलामी

फाइनल मैच खेलने का दिन 15 अगस्त का शुभ दिन था। एक बार अभ्यास मैच जर्मनी के साथ हारे जाने के कारण भारतीय खिलाड़ियों के मन के किसी कोने में थोड़ा भय तो समाया हुआ था, मैच प्रारंभ होने के पूर्व कप्तान की जिम्मेदारी होती है कि वह अपने खिलाड़ियों के मनोबल को बढ़ाने के लिए यथासंभव प्रयत्न करें। ध्यानचंद सोच रहे थे कि ऐसा क्या किया जाये कि सारे खिलाड़ी "करो या मरो" की स्थिति में आ जाएं। अचानक उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने मैच प्रारंभ होने के पूर्व ड्रेसिंग रूप में बोलते हुए भी अपनी टीम के खिलाड़ियों से सब कुछ कह डाला। सारे खिलाड़ी रोमांचित हो उठे। सभी भारतीय खिलाड़ी पूरे जोश में खड़े हो गये। उन्होंने अपने प्यारे तिरंगे को सलामी दी, जो उस समय उनका इष्टदेव बन गया था तथा ऊर्जा व स्फूर्ति से भरकर "भारत मां" का नाम रोशन करने के लिये वे सब खेल के मैदान की ओर चल पड़े। स्टेडियम में लगभग 40000 दर्शकों की खचाखच भीड़ एकत्रित थी। खेल प्रारंभ हुआ, जर्मनी ने आत्मविश्वास के साथ खेलते समय भारतीय शैली की नकल

प्रारंभ किया, जो उनके लिये अत्याधिक महंगा साबित हुआ। मध्यांतर के बाद भारत ने चारों तरफ से धावा बोल दिया और जर्मन टीम इस दबाव को बर्दाश्त नहीं कर पायी थी और जल्द ही धराशायी हो गई। जर्मन टीम चार गोल से पीछे थी। एक गेंद ऐलन के पैड पर जाकर लगी, फिर ''डी'' पर जाकर गिरी और गेंद रोकने के लिए फुर्ती से जर्मन खिलाड़ी ''वीज'' ने भारत के जाल में डाल दिया। मात्र यह एक गोल था, जो जर्मनी ने भारत के ऊपर 8 गोलों के जवाब में किया था।

जब ध्यानचंद ने हिटलर का प्रस्ताव ठुकराया

ओलम्पिक खेलों के समापन समारोह के पश्चात जर्मनी के ड्यूस हॉल में एक विशाल भोज का आयोजन किया गया था, जिसमें हिटलर भी शामिल था। एक लम्हा जो ठहर गया था। हमारे हॉकी के जादूगर ध्यानचंद को हिटलर सोने का तमगा (पदक) पहना रहा था, तो दूसरी तरफ ध्यानचंद के भाई रूप सिंह की वाहवाही करता हुआ यह भी कह रहा था—रूप सिंह! तुम विलक्षण हो! एक तरफ भारतीय पलटन मुस्करा रही थी, तो दूसरी तरफ जर्मनी की टीम असहाय सी उसे देख रही थी। तब भारत आजाद नहीं हुआ था, परंतु भारत की हॉकी आजाद थी। हिटलर ने इस भोज में ध्यानचंद जी के खेल से प्रभावित होकर उन्हें अपनी सेना में जनरल होने का प्रस्ताव रखा, जिसे ध्यानचंद ने शालीनता से अस्वीकार कर दिया। उन्हें अपना देश भारत प्राणों से भी ज्यादा प्यारा था, वे अपने देश से दूर रहने की सोच भी नहीं सकते थे। उनका कहना था—देश के प्रत्येक व्यक्ति का अपने परिवार, समाज एवं देश के प्रति कुछ कर्तव्य होता है। जिसका निर्वाह प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी लोभ-लालच के अवश्य ही करना चाहिए। ध्यानचंद जी का यह राष्ट्रप्रेम अपने देश के खिलाड़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत एवं अनुकरणीय है।

अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय सम्मान के धनी ध्यानचंद जी

भारत सरकार ने सन् 1956 में ध्यानचंद जी को पद्म भूषण से सम्मानित किया एवं सन् 1989 में मरणोपरांत ध्यानचंद के नाम से डाक टिकट जारी किया गया। 8 मार्च सन् 2002 को राष्ट्रीय स्टेडियम दिल्ली का पुनः नामाकरण ध्यानचंद जी के नाम पर तत्कालीन खेलमंत्री सुश्री उमाभारती एवं माननीय लालकृष्ण आडवाणी जी के प्रयास के फलस्वरूप हुआ।

झांसी के पूर्व सांसद पंडित विश्वनाथ शर्मा ने 24 अगस्त, 1994 को लोकसभा में सरकार से मेजर ध्यानचंद जी के जन्म दिवस 29 अगस्त को 'खेल दिवस' घोषित करने की मांग की। इस पर तत्कालीन खेलमंत्री श्री मुकुल वासनिक ने इस प्रस्ताव की सराहना करते हुए इस संबंध में औपचारिकताएं पूरी होते ही 29 अगस्त

को राष्ट्रीय खेल दिवस घोषित करने का आश्वासन दिया। बाद में दिसंबर 1994 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिंह राव की सरकार ने 29 अगस्त को विधिवत् राष्ट्रीय खेल दिवस घोषित कर दिया। 1971 के नवंबर माह में बिपिन बिहारी इंटर कॉलेज के परिसर में हुए एक सम्मान समारोह में ध्यानचंद जी ने कहा था कि यदि ईश्वर उनकी आयु 50 वर्ष कम कर दें तो वे आज भी स्वर्ण पदक लाने की क्षमता रखते हैं। 20 नवंबर 1979 को मेजर ध्यानचंद जी अचानक बीमार पड़ गये, उन्हें दिल्ली ले जाया गया। उपचार के बावजूद ध्यानचंद जी ने 3 दिसंबर 1979 को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में इस संसार से सदा-सदा के लिए आंखें मूंद लीं। ध्यानचंद जी की इच्छानुसार ही उनके पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार स्थानीय हीरोज क्लब क्रीडांगन में लाखों अश्रुपूरित नागरिकों के बीच सैनिक व राष्ट्रीय सम्मान के साथ किया गया।

यकीनन ''खेल'' दुनिया में सर्वोपरि है, न तो उसका कोई दीन है, न धर्म है, न ही उसकी कोई जाति या भौगोलिक सीमा है। उसे किसी दायरे में सीमित नहीं किया जा सकता। निष्काम खेल खेलने वाला खिलाड़ी अपने समाज, राज्य और देश की सीमाओं से निकल कर पूरी दुनिया में लोगों के हृदय में राज करता है, इसका सशक्त उदाहरण थे मेजर ध्यानचंद जी।

***

साक्षात् कृष्णा सोबती

महावीर अग्रवाल

कहानी की कोई निर्मित भाषा नहीं होती। हर रचना की भाषा कहानी के साथ बदलती है। हर वर्ग के साथ बदलती जाती है। भाषा रचना की वह कसौटी है जिससे वह स्वयं को और समाज को जांचता-परखता है। अपनी खिड़की से नीला आकाश निहारने वाली नैसर्गिक भाषा, नोचा-नाची से बहुत दूर होती है। इसलिए पारदर्शी भी होती है। अपनी ऊष्मा को सहेजे हुए भाषा ने रोमान की जकड़ से अपने को मुक्त किया है। परिवर्तनों की हलचल ने जो परिवर्तन हमारी सोच में किए हैं उसने काफी तेजी से कहानी में भाषा की पड़ताल की है।

सम्पर्कः ए-14, आदर्श नगर, दुर्ग (छत्तीसगढ़)-491001, फोनः 0788-2356234

महावीर अग्रवाल : अब तक छपी कहानियों में कौन सी कहानी आपको अधिक प्रिय है, और क्यों?

कृष्णा सोबती : अपनी कहानियों के लिए मेरे तटस्थ भाव हैं। न अच्छी न बुरी। कहानियाँ बहुत हैं अपनी भी, दूसरों की भी। लिखते समय सभी कहानियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। कुछ समय बाद मैंने महसूस किया और आपसे पहले भी कहा है, लिखे हुए साहित्य का साम्राज्य इतना विशाल है कि किसी एक कहानी पर ठहर जाना कुछ ठीक प्रतीत नहीं होता। असंख्य अनाम लोगों को कहानी अच्छी लगे, यही उसकी कसौटी हो सकती है। मेरी कहानी छपने के बाद पाठक समुदाय की चिट्ठियाँ मुझे मिलती रही हैं। अपनी किसी एक कहानी की चर्चा करना उचित प्रतीत नहीं होता। समय-समय पर आने वाले पत्रों में अनेकानेक पाठकों ने मेरी अधिकांश कहानियों पर अपनी-अपनी बात लिखी। इन तरह मेरे मन में अपनी कहानियों के लिए तटस्थ भाव है।

महावीर अग्रवाल : अच्छा, यह बताइए, आपकी पहली कहानी कब और किस पत्रिका में छपी?

कृष्णा सोबती : कलकत्ता से 'विचार' नाम की पत्रिका निकलती थी, इसमें मेरी कहानी 'लामा' सन् 1944 में छपी थी। इसके संपादक भगवतीचरण वर्मा थे। पहली कहानी 'नफीसा' की बात छूट रही है। और फिर 'लामा' के बाद 1948 में 'सिक्का बदल गया' कहानी अज्ञेय के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'प्रतीक' में छपी थी।

महावीर अग्रवाल : आप कहानियाँ क्यों लिखती हैं?

कृष्णा सोबती : समाज में अपनी ज़िंदगी जीते हुए, रहते

हुए, अपने को और अपने बाहर को देखते हुए, स्थितियों, परिस्थितियों और पात्रों के सान्निध्य में जो जिंदगी के पार नजर आता है, उसे खोजकर संचित निधि में जमा करना चाहती हूँ। इसलिए कहानियाँ लिखती हूँ। यह संचित निधि ही साहित्य है। साधारणत: कहानी की स्थितियाँ मुझे लिखने से पहले पता होती हैं, तो मैं वह कहानी कभी नहीं लिखती। मेरे पास ऐसा देखा हुआ, जीया हुआ, पाया हुआ वह बहुत कुछ है, जिसे मैंने नहीं लिखा। कहानी मात्र घटनाचक्र नहीं है। स्थितियों की शर्त नहीं है। इसके बहुत गहरे जाकर हमें कुछ ढूँढ़ना होता है। रचना जीवन के गहरे अनुभव और संवेदन से जन्म लेती है। रचना के मुताबिक और मौन पाठ द्वारा कुछ ऐसा प्रस्तुत करना होता है जो एक स्तर पर मात्र व्यक्तिगत नहीं होता वरन् एक बड़े मानवीय बोध से आपको जोड़ता है।

महावीर अग्रवाल : कहानियों में कथ्य और कलात्मक संतुलन की कोई सीमा तय होनी चाहिए या कहानी कथ्य प्रधान होनी चाहिए?

कृष्णा सोबती : इसकी सीमा तय करना कुछ ऐसा होगा कि आप किसी निर्णय के मुताबिक कहानी को ग्राफ में प्रस्तुत कर रहे हैं। सृजनात्मक स्तर पर यह प्रयोग बहुत बड़ी दुर्घटना होगी। कहानी की ऐंद्रिक चेतना ने पुरानी भावुकता से अपने को अलग कर नये आयामों को जरूर अन्वेषित किया है। शब्दों की लय और धीमी आहट ने कहानी को उसकी निजता से सुसंस्कृत किया है। कहानीकार रचना को गूंथते हुए कथ्य और शिल्प के बीच की दरार को पाटने की कोशिश करता है। शिल्प के संयमित प्रयोग से कहानी का कथ्य अपनी शर्तों पर कहानी की निबंधना करता है। इस तरह विचारों की प्रस्तुति सोच के चिंतन को ओट देती है तो उसका मुहावरा निहायत शांत और अनोखापन लिए होता है।

महावीर अग्रवाल : कहानी की भाषा के संबंध में आप अपने विचार बताइए।

कृष्णा सोबती : कहानी की कोई निर्मित भाषा नहीं होती। हर रचना की भाषा कहानी के साथ बदलती है। हर वर्ग के साथ बदलती जाती है। भाषा रचना की वह कसौटी है जिससे वह स्वयं को और समाज को जांचता परखता है। अपनी खिड़की से नीला आकाश निहारने वाली नैसर्गिक भाषा, नोचा-नाची से बहुत दूर होती है। इसलिए पारदर्शी भी होती है। अपनी ऊष्मा को सहेजे हुए भाषा ने रोमान की जकड़ से अपने को मुक्त किया है। परिवर्तनों की हलचल ने जो परिवर्तन हमारी सोच में किए हैं उसने काफी तेजी से कहानी में भाषा की पड़ताल की है। कहानीकारों ने भाषाई रचाव का ऐसा मुखड़ा प्रस्तुत किया है जो बोलियों की सत्ता को बरकरार रखे हुए है। पहले भी मैंने कहा है, अलग अलग कार्यक्षेत्रों में बौद्धिक और कार्यगत पर्यावरण के क्षेत्र में भाषा बदलती है। इसी तरह कहानी की भाषा, उन चरित्रों और पात्रों के साथ जो आपकी कहानी के आमुख हैं और उसके नेपथ्य में उनका संसार गुंथित है। भाषा के साथ, शब्द के साथ उसका संस्कार साथ चलता रहता है। शब्दों के चयन में यह सावधानी जरूरी है कि पाठक एक शब्द के दो अर्थ न लगा सके। भाषा की विश्‍वसनीयता का होना बहुत जरूरी है।

महावीर अग्रवाल : क्या लेखन के कारण व्यक्तिगत जीवन में कभी संघर्ष का सामना करना पड़ा? कोई अविस्मरणीय घटना?

कृष्णा सोबती : यह बड़ा मुश्किल प्रश्न है। महावीर जी, ऐसे ऐसे संदर्भ हैं कि रोंगटे खड़े हो जाएँ।

महावीर अग्रवाल : नए कहानीकारों की कुछ उल्लेखनीय कहानियों के साथ कथाकारों के नाम भी बताइए।

कृष्णा सोबती : आज की जो कहानी है, उसकी तलाश और बुनावट बदल गई है। वे उन्हें अपने वातावरण से उठा रहे हैं, इसलिए संवेदन

के रूप में कहानी का रंग रूप बदलता जा रहा है। यहाँ पर यह याद करना भी जरूरी होगा कि कहानी पहले मौखिक सुनाई जाती थी। कहानी अब बहुत से प्रभावों को ग्रहण कर चुकी है, कर रही है। कहानीकार ने हर बदलाव को चीन्हा है, बदलावों के द्वंद्व पर आँख रखी है और अपने औजारों से बहुत कुछ कुरेदा भी है। नई और पुरानी कहानियाँ मिलाकर अब तक पढ़ी कहानियों को ताजा करने की एक कोशिश की जा सकती है। कफन, उसने कहा था, गदल, डिप्टी कलेक्टरी, कोसी का घटवार, राजा निरबंसिया, गुल की बन्नो, परिंदे, रसप्रिया, चीफ की दावत, पठार का धीरज, दोपहर का भोजन, शरणार्थी, जहाँ लक्ष्मी कैद है, मलबे का मालिक, टूटता पत्थर, दो दुखों का एक सुख, रहमतुल्ला, मौसी बच्ची, पत्थर अल पत्थर, डाची, अजगर, एक कमजोर लड़की की कहानी, यही सच है, ज्ञानदान, फूलों का कुरता, देवा की माँ, तथापि, बदबू, सुखांत छलांग, काला रजिस्टर, जो घटित हुआ है, खोई हुई दिशाएँ, धरती अब भी घूम रही है, सावित्री नंबर दो, हंसा जाई अकेला, मिस पाल, पिता, रक्तपात, फेंस के इधर उधर, नौ साल छोटी पत्नी, रीछ, माध्यम, सेलर पुल, वापसी, पिता दर पिता, शव यात्रा, पानी और पुल, गांठ, एक जिंदगी बेदाग, लोग बिस्तरों पर, प्रेतमुक्ति, कुत्तेखानी, मांस का दरिया, जिंदगी और गुलाब के फूल, मजबूरी, नन्हीं झाड़ी एक वह, बंद गली का आखिरी मकान, भोलाराम का जीव, सफेद मेमने, दूरियाँ, पेपरवेट, धांसू, अश्वारोही, छोटी टेलीफोन बड़ी टेलीफोन, बाल भगवान, एक और हिटलर, लाटी जहाज, एक नीच ट्रैजडी, लंदन की एक रात, बीच बहस के, शेरनी, हुस्ना बीबी, कसाईबाड़ा, राजपाट, हमशक्ल स्कूल गाथा, दिल्ली में मौत, उसका क्रास, पत्थरगली, आवेदन करो, तीसरी आजादी का इंतजार, मेरे शहर के घोड़े, पैंट, देशांतर,

एक वाजिब आदमी, अपना रास्ता लो बाबा, घोड़े बादशाह, आत्मकथा का मनोभाव, इब्बू मलंग, अपने दायरे, माई की महिमा, बीच बहस में, फ्राक वाला घोड़ा, निकर वाला साईस, मोर्चा, बेलपत्र, चलो मैं आता हूँ, रमजान की मौत, पुल आदि। अभी भी कई कहानीकारों की अनेक जरूरी कहानियों के नाम छूट रहे हैं। कहानियाँ इतने बड़े पैमाने पर लिखी जा रही हैं कि सभी कुछ जान सकना और पढ़ जाना लगभग असंभव है।

महावीर अग्रवाल : क्या रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना आप जरूरी मानती है? यदि हां तो क्यों, यदि नहीं तो क्यों?

कृष्णा सोबती : कोई न कोई प्रतिबद्धता के साथ जुड़ा होना बहुत जरूरी है। जो जीवन का सत्य है जरूरी नहीं कि वह कहानी का भी हो। इसीलिए हम कहानी को मात्र मानवीय आग्रहों की अभिव्यक्ति नहीं, व्यापक प्रवृत्तियों की विधा

मानते हैं। मूल्यों की धरोहर और मानवीय विश्वास के प्रति मेरी प्रतिबद्धता है। यह हमेशा स्मरण रखना चाहिए कि लेखन से भी बड़े वे मूल्य हैं जिनके लिए इंसान संघर्ष करता आया है।

महावीर अग्रवाल : कहानी के साथ-साथ और किस विधा (नाटक, उपन्यास, कविता, निबंध) में लिखना आपको अच्छा लगता है।

कृष्णा सोबती : 'हम हशमत' की चर्चा आप अक्सर करते हैं। आपको मालूम ही है, शुरुआती दिनों में कुछ कविताएँ भी लिखी थीं। गद्य में सघनता और स्पष्टता लगातार आकर्षित करती है। 'मित्रो मरजानी' की नाट्य प्रस्तुतियाँ भी बहुत हुई हैं और देखने में ठीक लगीं। वैसे उपन्यास लिखना मुझे अच्छा लगता है।

महावीर अग्रवाल : रूस और फ्रांस की क्रांति के समान ही आज की बदलती हुई परिस्थितियों में लेखन द्वारा सामाजिक, वैचारिक और क्रांतिकारी परिवर्तन संभव है या नहीं ?

कृष्णा सोबती : अपने यहाँ की परिस्थितियों में यह मुमकिन नहीं लगता। भारतीय जनजीवन और मानस में हो रहे वैचारिक, सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों को हिंदी कहानी सजगता के साथ अंकित कर रही है। अंतर्दृष्टि के बल पर जीवन को परखने की कोशिश तो निश्चित रूप से है। कहानीकार अपने आप में कोई सुधारवादी संस्थान या क्रांतिकारी संगठन नहीं है। इसके बाद भी पिछले सौ वर्षों की कहानी को देखें तो, रचनात्मक कथ्य और तात्कालिक अनुभव को गूंथकर उसने अपनी विकास यात्रा जारी रखी है। कहानी, नैतिक चिंताओं और सामाजिक यथार्थ द्वारा मानवीय संवेदना की पड़ताल करने के लिए प्रतिबद्ध नजर आती है। पिछले इतिहास और भूगोल के समीकरणों को देखकर शायद क्रांति के बीच का कोई ऐसा रास्ता निकल सकता है जो हमारे लोकतंत्र के करीब हो।

महावीर अग्रवाल : रचनाकार के लिए सामाजिक दायित्व का बोध बहुत जरूरी माना जाता है। सांप्रदायिक दंगों की इस आग को बुझाने के लिए लेखक को अपनी भूमिका किस रूप में अदा करनी चाहिए।

कृष्णा सोबती : भारतीय समाज का यह दौर बहुत ही उलझा हुआ और खलबलीपूर्ण है। एक वर्ग ऐसा है जो समूचे समाज को विभक्त करने पर तुला हुआ है। वे धर्म और संप्रदाय के नाम पर मानवीय अधिकारों का हनन करते हैं। विभिन्न वर्गों को प्रताड़ित करते हैं। सामाजिक स्तर पर ही नहीं, सृजनात्मक स्तर पर भी लेखक इन मुद्दों से अपने को जुड़ा हुआ पाता है और गंभीरता से लेता है। जटिलतर सामाजिक संबंधों के परिणामस्वरूप वैयक्तिक और सामाजिक स्तरों पर हम इन कुकृत्यों का विरोध करते हैं। अंत: क्रिया और संवेदना के स्तर पर उसकी कृति सांप्रदायिक दंगों का विरोध करती है। उसकी कृति संकेत और संस्कार द्वारा संवाद की प्रक्रिया को गति देती है। लेखक बहुत गहरे विश्वास के साथ उन मानवीय और राजनैतिक संदर्भों से अपनी रचना को जोड़ता है जिनके परिणाम दूरगामी होते हैं।

महावीर अग्रवाल : हिंदी कहानी आलोचना की जो स्थिति है उस पर आप क्या सोचती हैं ?

कृष्णा सोबती : आपके इस प्रश्न का सही जवाब तो आलोचक ही दे सकते हैं। आलोचकों के काम पर बात करना बहुत जोखिम भरा काम है। वैसे मुझे आलोचक की एक तटस्थ दृष्टि कहीं दिखाई नहीं देती। निष्पक्ष मूल्यांकन की प्रवृत्ति न जाने कहाँ गुम हो गई ? आलोचना का व्याकरण बहुत प्रमाणिक नहीं रह गया है। आलोचक की अपेक्षाकृत पाठक अधिक चौकन्ने और ईमानदार दिखाई देते हैं।

***

हिंदी को बनाना होगा विश्व ज्ञान की भाषा

विनय सहस्त्रबुद्धे

10 नवंबर 1957 को नासिक में जन्मे डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे भारत के विद्वान राजनीतिक चिंतक के रूप में जाने जाते है। महाराष्ट्र से राज्यसभा सांसद तो हैं ही, आप वर्तमान में 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के अध्यक्ष' भी है।

साक्षात्कारकर्ता

डॉ. आशीष कंधवे

सम्पर्क: एडी-94डी, शालीमार बाग, नई दिल्ली-110088

मो: 9811884393

प्रश्न : अध्यक्ष महोदय, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद आने वाले समय में हिंदी और संस्कृति को नई पीढ़ी से जोड़ने के लिए किस तरह से कार्य करेगी?

उत्तर : हिंदी धीरे-धीरे बहुराष्ट्रीय भाषा बन रही है, क्योंकि हिंदी बोलने वालों की संख्या भारत के अलावा अन्य देशों में भी बढ़ रही है। कुछ देश तो ऐसे हैं जैसे मॉरीशस और फीजी, जहां पर हिंदी प्रमुख भाषा में से एक है। कुछ देश और भी होंगे जहां पर हिंदी का प्रचलन खूब है जैसे सूरीनाम जैसा देश। जहां हिंदी एकदम भारतीय हिंदी नहीं परंतु यहां थोड़ा अन्य भाषाओं का मिलाप भी हुआ होगा या हिंदी का कोई नया संस्मरण विकसित हुआ होगा। मगर कुल मिलाकर हिंदी की जो व्यापक पहचान है, जिससे कई सारी बोलियां भी आती हैं, उस पहचान से मेल खाने वाली भाषा बोलने वाले देशों की संख्या बढ़ रही हैं। हिंदी की चर्चा करते समय उसके अंतर्राष्ट्रीय पहलू को भी हमें ध्यान में लेना चाहिए। यद्यपि भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद का काम मुख्य रूप में एनआरआई कम्यूनिटी के लिए नहीं मगर विदेश में बसे उन लोगों के लिए है जो एनआरआई नहीं हैं। उनके अंदर भारतीय संस्कृति के आकलन में रुचि बढ़ाना हमारा काम है मगर यह हिंदी बोलने वाले अन्य देशों में रहने वाले लोग भी हो सकते हैं जो भारतीय संस्कृति का आकलन करने में उतने रुचि न लेते हों जितनी लेनी चाहिए, क्योंकि न केवल उनकी भाषा हिंदी है बल्कि उनका लालन, पालन एवं पोषण भी उसी परिवेश में हुआ है। ऐसी युवा पीढ़ी जिनका अपने घर से अगर हिंदी या हिंदी समान भाषा का विलोप हो जाता है तो जो एक समस्या उत्पन्न होती है जिसके लिए कुछ कार्य करने की जरूरत है। इस दृष्टि से छोटे स्तर पर हिंदी परिचय वर्ग आयोजित करना होगा ताकि हिंदी साहित्यकारों से इस नई पीढ़ी का उनकी विशिष्ट रचनाओं के माध्यम से परिचय करवाया जा सके। महत्वपूर्ण बात यह है कि जिस पद्धति से बालीवुड हिंदी का वाहक बन चुका है आज हिंदी भाषा न बोलने वाला व्यक्ति भी राजकपूर के

गानों को जानता है और गुनगुनाता भी है। ऐसे में हिंदी के लिए सिनेमा अतिरिक्त बल के रूप में मिल गया है बॉलीवुड के कारण। मगर यह जो अतिरिक्त बल मिला है यह केवल कानों से गुजरी हुई हिंदी है, उसको दिल तक ले जाने की आवश्यकता को समझते हुए आईसीसीआर को आने वाले समय में काम करना पड़ेगा।

प्रश्न : आपकी बातों से यह प्रश्न उठता है कि आप भी बॉलीवुड को ही सबसे बड़ा हिंदी का प्रचारक या विस्तारक मानते हैं क्या?

उत्तर : मैं उस चर्चा में नहीं जाऊँगा मगर बॉलीवुड का अपना एक योगदान तो है ही, हिंदी सिनेमा का एक बड़ा योगदान है। भारत में जिसको मुख्य धारा का बॉलीवुड सिनेमा कहा जाता है उसके अलावा कई सारे आर्ट फिल्मों की भी बहुत चर्चा होती है जो विश्व विख्यात बन चुकी है। उनकी भाषा भी हिंदी है, मैं मानता हूँ जिस किसी वाहन के द्वारा हिंदी और हिंदी का हाथ पकड़कर भारतीय संस्कृति विश्व के विभिन्न समुदायों तक और विभिन्न भू-भागों तक अगर पहुँच रही है तो, वह स्वागत योग्य है और उसमें कोई गलत या सही प्रतिस्पर्धा का भाव दिखाने की जरूरत नहीं है।

प्रश्न : अध्यक्ष महोदय, नई पीढ़ी के लिए परिषद की क्या मुख्य योजनाएं हैं?

उत्तर : जहाँ तक नई पीढ़ी की बात है तो आज विश्व की नई पीढ़ी में भारत के प्रति एक कौतूहल है। भारत के प्रति जो नई पीढ़ी में कौतूहल है उसे भारत के प्रति ज्ञान बढ़ाने की दिशा में हम ले जा पाएँ तो शायद ज्ञान के साथ-साथ आकलन भी बढ़ेगा। उस दिशा में इस पूरे प्रवाह को ले जाने की आवश्यकता है तो उस दृष्टि से क्या किया जा सकता है इस पर हम चर्चा कर रहे हैं। एक भारत आकलन पाठ्यक्रम बनाने भी हमारी कल्पना है और उस माध्यम से विशेष रूप में विदेश की विभिन्न संस्थाओं में काम करने वाले देश के विभिन्न शहरों में या विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं में (जिनको रैंक होल्डर्स कहा जाता है) ऐसे छात्रों का हृदय जीतना हमारे लिए महत्वपूर्ण है। सभी का हृदय जीतना है, क्योंकि वो उनकी जिंदगी में ऐसे स्थानों पर जाने वाले हैं जहां से वो विश्व समुदाय की सेवा के लिए आरंभ कर सकते हैं, चाहे कॉरपोरेट सेक्टर में हो, चाहे गवर्मेंट सेक्टर में हो, चाहे यूनाइटेड नेशन में हो। वह जहां भी जाएंगे और कुछ करेंगे इससे पहले हमारा एक काम बनता है कि हम उनके अंदर भारत के प्रति एक सही आकलन करने की रुचि उत्पन्न करें। इस दृष्टि से हम मानते हैं कि ऐसे प्रतिभाशाली युवाओं का, जो भविष्य के नेता हैं उनको भारत में आने, उनके लिए कोई एक कार्यक्रम बनाने और भारत में आने के साथ-साथ उनकी भारतीय समाज के परिचय की दृष्टि से दो या तीन दिन किसी भारतीय परिवार में रहने की व्यवस्था करनी होगी। इस पद्धति से हम मानते हैं कि उनमें भारत के भूत, वर्तमान व भविष्य के सही आकलन का निर्माण कर सकते हैं।

प्रश्न : भारत, भारतीयता, भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार बढ़ाने और बचाने के लिए क्या 10वीं तक हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को पाठ्यक्रम में पढ़ाना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिये?

उत्तर : इसकी भी चर्चा शिक्षा क्षेत्र के गलियारों में हो रही है, शिक्षाविद् इस संदर्भ में सोचने के लिए अधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं। मैं मानता हूँ कि इस चर्चा को समाप्त होने तक हम थोड़ा इंतजार करें। व्यक्तिगत रूप में दो तरीके के आकलन शिक्षाविदों के द्वारा सामने आए हैं। एक आकलन है कि जो मातृभाषा है उसके साथ मित्रता आसानी से बन जाती है क्योंकि मातृभाषा में पढ़ना और ठीक से समझना संभव है मगर दूसरा भी एक आकलन बताया जाता है कि कम उम्र में हर कोई व्यक्ति जितनी अधिक भाषाएँ सीखने की क्षमता रखता है वो बाद में नहीं सीख सकता, तो इन दोनों का एक आकलन बनाते हुए मध्यमार्ग निकालना चाहिए, मगर इस सोच के पीछे जो बिंदु है उससे मैं सहमत हूँ।

प्रश्न : भाषा की अनिवार्यता को प्रयोगमूलक, रोजगारमूलक बनाने से हम कहीं न कहीं चूक गये हैं आप इस बारे में क्या सोचते हैं?

उत्तर : मैं कोई भाषाविद् नहीं हूँ और न ही हिंदी का विस्तृत अध्येता ही हूँ लेकिन डिसक्लेमर डालकर जो मुझे कहना है वह मैं कह रहा हूँ तो उसे उसी अंदाज में लिया जाये। मैं मानता हूँ कि एक ओर तो भाषा का मूल स्वरूप जो है वो सुरक्षित होना चाहिए और दूसरी ओर भाषा को जो उपयोजन है, अप्लाइड स्वरूप है उसको भी ध्यान में लेना चाहिए। कई बार भाषाओं

की चर्चा के संदर्भ में यह मिलावटी दिखती है। अंग्रेजी और हिंदी भाषाओं का मिलाप आज हम देखते हैं। इसमें इंग्लिश का परिचालन ज्यादा ही है। अभी इसमें केवल मात्र शिकायत करने से कुछ नहीं होगा। अगर हम सरल हिंदी के प्रयोग के बारे में कुछ एक आकलन करें, कुछ शब्दों का प्रचार-प्रसार करते हैं, जैसे मैं उदाहरण देता हूँ—हमारे देश में 'मेयर' नाम का एक शब्द बहुत पहले से चला था (महानगरों के अध्यक्ष को मेयर कहा जाता है) उसको 'महापौर' शब्द दिया गया, जो पहले मराठी में आया अब हिंदी में भी है। इसलिए अपनी प्रतिभा को उपयोग करते हुए नए-नए शब्दों का सृजन करना जरूरी है। यह काम आज कौन कर रहा है मुझे जानकारी नहीं। महापौर कोई कठिन शब्द नहीं, आसान शब्द है, सामान्य शब्द है और अब प्रचलित भी बन गया है। मैं मानता हूँ कि हिंदी मराठी तक ही नहीं कई अन्य भाषाओं में भी मूलतः संस्कृत शब्द है। पौर से महापौर हो गया तो इस तरीके से अगर आसान शब्दों का सृजन करने का काम कोई गंभीरतापूर्वक करता है तो मैं मानता हूँ कि हिंदी का प्रयोजन रोजगार के लिए भी बढ़ेगा।

प्रश्न : हिंदी बाजार की भाषा तो बनी है पर रोजगार की भाषा क्यों नहीं बन पा रही है?

उत्तर : उसके लिए दो-तीन चीजें हैं, एक तो हिंदी कहो या अन्य भारतीय भाषाएँ हों, जब तक वह पहले अंतर्राष्ट्रीय भाषा नहीं बनती तब तक उसको ज्ञान के विश्व की भाषा (नॉलेज वर्ल्ड लैंग्वेज) बनना कठिन होगा। इसके लिए मेरा मानना हैं हिंदी को पहले संयुक्त राष्ट्र संघ के अंदर एक मान्यता प्राप्त भाषा का दर्जा प्रदान करने के लिए एकमात्र लक्ष्यों की ओर अपने सारे प्रयासों को केंद्रित करना चाहिए। जब यूनाइटेड नेशंस में हिंदी की स्वीकृति होगी तब जो आज यूएन में 5-6 भाषाएँ हैं उनकी तरह विश्व के अन्य देशों में भी हिंदी भाषा को सम्मान का दर्जा मिल पाएगा। जब विश्व में हिंदी को उन भाषाओं के समान दर्जा मिलेगा तो वैश्विक बाजार में प्रचलित प्रोडक्ट लिटरेचर, मेडिसिन लिटरेचर, इक्विपमेंट लिटरेचर आदि अभी उपलब्ध नहीं हैं। जब हिंदी यूएन की अधिकारिक भाषा बन जायेगी तब इन चीजों को हिंदी में उपलब्ध कराने के प्रयासों को एक तार्किक आधार मिल पाएगा। तब कहीं जाकर के फिर हम उसको ज्ञान भाषा के रूप में विकसित कर पाएँगे और वह ज्ञान भाषा बनेगी तो व्यापार उद्यम की भाषा भी बन पाएगी।

प्रश्न : राष्ट्र संघ की भाषा हिंदी बने यह हम सब के लिए गौरव की बात है, लेकिन क्या आप मुझे इस बात

की ओर संकेत कर पाएँगे कि हम हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने में कब तक सक्षम होंगे?

उत्तर : हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी उस रूप में नहीं है मैं जानता हूँ, उसको राष्ट्रभाषा का अधिकारिक दर्जा नहीं है मगर राजभाषा तो बनी है। मैं मानता हूँ इस पर नए सिरे से एक सोच बनाई जा सकती है, अभी मुझे लगता है कि बदले हुए परिवेश में हिंदी के बारे में जो संकोच दक्षिण के प्रदेशों में रहता था वह अभी उतना नहीं है। मगर साथ ही साथ यह भी है कि उसको किसी के ऊपर लादा या थोपा तो नहीं जा सकता है। महात्मा गांधी के जमाने से राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार हुआ, सारे काम इसी से चलते थे। उन कामों को और कैसे महत्वपूर्ण बनाया जाए इसके बारे में हिंदी के जितने विद्वान हैं, साहित्यकार हैं, हिंदी भाषा के संदर्भ में चिंतन करने वाले लोग है उन सभी को मिलकर एक रणनीति बनानी चाहिए कि किस पद्धति से हिंदी के प्रति प्रेम बढ़ेगा, अपनत्व बढ़ेगा। भाषा विवादों के कारण जो विरोध होता है वह समाप्त हो पाएगा इसकी थोड़ी और चर्चा कर उन आधार पर रणनीति बनाना जरूरी है, तब जाकर के अधिकाधिक माताएँ भी हिंदी बोलेंगी और माता बोलेंगी तो मातृभाषा हिंदी होगी ही।

प्रश्न : आज जब बाजार हम सब पर हावी होता जा रहा है ऐसी स्थिति में भारतीय संस्कृति का सबसे मजबूत पक्ष आप किस को देखते हैं और क्या देखते हैं?

उत्तर : भारतीय संस्कृति की सबसे मजबूत धारा उसकी संवेदनशीलता है, वह किसी चीज को नकारती नहीं। इसलिए भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित मजबूती के कारण मैं मानता हूँ कि भारतीय संस्कृति विश्व में बहुत सम्मान रखती है और उसको सम्मान दिया जाता है। मगर साथ ही साथ यह भी है कि भारतीय संस्कृति की यह जो बहुरंगी छवि है उसके प्रति आकलन बढ़ाना जरूरी है, जैसे मैं एक उदाहरण देता हूँ, हम कहते हैं विविधता में एकता के स्थान पर एकता में विविधता है, विविधता के कारण एकता नहीं है, एकता के कारण विविधता है। वो एकता जो है उसका विविधांगी रूप है। मान लीजिए हमारे नृत्य प्रकारों में कहीं बिहू है, कहीं भरतनाट्यम है कहीं गरबा है, कहीं राजस्थानी नृत्य है, तो यह जो सारे नृत्य हैं यह एक दृष्टि से हमारे कला नृत्य या साधना की ओर देखने की जो समान दृष्टि है उसका विविधांगी रूप है। इसको हमें मानना चाहिए, इसको जब हम स्वीकार करेंगे या इसका जब आकलन बढ़ेगा तब जाकर के यह संभव होगा। अभी भाषाएँ इतनी विविध हैं, मगर आप असमी भाषा ले लो, हिंदी ले लो, मराठी ले लो या तमिल ले लो, हमारी बहुत सारी भाषाओं में मुहावरों और लोकोक्तियों का एक समान रूप दिखाई देता है। यही तो मूल एकता के कारण बने हैं। मूल सोच ही इसके कारण बने हैं, तो एक इस एकता का अनुभव के धरातल पर परिचय कर देना मैं जानता हूँ कि यह एक चुनौती है, ऐसा अगर होगा तो कोई समस्या नहीं रहेगी। यही भारतीय संस्कृति का सबसे मजबूत पक्ष है।

प्रश्न : समकालीन सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीयता का प्रश्न एक प्रमुख मुद्दा है भारत में, आजकल लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना को लेकर एक अजीब सी छटपटाहट भी हमें समाज में दिखाई दे रही है। आप आने वाले समय में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना में सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश या योगदान क्या देख रहे हैं?

उत्तर : जिस पद्धति से टेक्नोलॉजी हमारे व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन पर हावी हो रही है उसमें इस तरह के तनावों का सामना करना स्वाभाविक है, इससे विचलित होने की जरूरत नहीं है, यह जो स्थिति आती है उसमें कई बार अपने परिचय व अपनी अस्मिता से जुड़े हुए विषय होते हैं। अगर भारत के टेलीविजन चैनल पर जो धारावाहिक प्रस्तुत किए जाते हैं उसमें एक भी धारावाहिक अगर किसी जनजाति समाज के बारे में नहीं है तो देश का या देश के अन्य भागों का या भारत का जनजातीय समाज में इस रिक्तता के कारण एक आवेश उत्पन्न होता है। उसमें वह खुद की परछाई नहीं देख पाता है। इससे हमारा जो मुख्य प्रवाह है वो जितना हमारे सारे संपूर्ण प्रवाहों का या प्रवाहों के अंदर जो उप प्रवाह है उनके स्वर को बुलंद करेगा, तब यह छटपटाहट कम होगी। आज मैं जानता हूँ कि यह छटपटाहट उसी के कारण है। वैसे देखा जाए तो जिसको आप मुख्य प्रवाह कहते हैं उसका निर्माण कहाँ हुआ है, यदि वो पहाड़ों से हुआ है तो पहाड़ ही तो मुख्य प्रवाह है, जनजाति ही तो हमारा मुख्य प्रवाह

है, क्योंकि लोक जीवन का शुद्ध रूप हमें तो वहीं दिखाई देता है। मगर हम उसकी अनदेखी करते हैं और जो नए अर्बन माहौल का जो दबदबा बना है उसकी चकाचौंध में हम लिप्त हो जाते हैं। मैं मानता हूँ कि यह आकलन हमें होना चाहिए और इसीलिए विशेष रूप में धारावाहिक जो प्रस्तुत होते हैं उनके बारे में कहूँगा कि उन्होंने समाज में जो जनप्रिय है वो हम दिखाएंगे। यह तो ठीक है क्योंकि यह एक आर्थिक अंग भी है। जो पॉपुलर होगा हमें दिखाएंगे ताकि टीआरपी बढ़े यानी लोगों को क्या देखना अच्छा लगना चाहिए इसमें भी तो आपकी कुछ भूमिका है। धारावाहिक प्रस्तुत करने वाला और कोई चॉकलेट का प्रोडक्ट बेचने वाला इसमें कुछ अंतर है कि नहीं? इस अंतर को हमें समझना चाहिए अगर वो हम नहीं समझेंगे तो हम बड़ी भूल कर बैठेंगे।

प्रश्न : आजकल राष्ट्रवाद की बहुत ज्यादा चर्चा हो रही हैं। संस्कृतिकर्मी, साहित्यकर्मी भाषा से जुड़े हुए लोग अराष्ट्रवादी कैसे हो सकते हैं, ऐसी चर्चा है। कुछ लोग एक धड़े के साथ हैं वह राष्ट्रवादी हैं और बाकी राष्ट्रवादी नहीं हैं, यह कैसी चर्चा चल रही है?

उत्तर : हमने कभी भी इस चर्चा को उस रूप में स्वीकार्य नहीं किया है कि इस तरीके का विभाजन करना चाहिए। राष्ट्रवादी और गैर-राष्ट्रवादी इस तरीके का विभाजन अगर कोई कर रहा है तो मैं मानता हूँ कि उन्हें थोड़ा और गहरा विचार करना चाहिए, मगर यह बात भी सही है कि हमारे देश में स्वाधीनता के जमाने से राष्ट्रवाद हमारे सामाजिक सांस्कृतिक जीवन पर छाया हुआ था, मगर बीते दिनों लगभग दो दशकों से पहले कहूँ कि राष्ट्रवाद को एक दृष्टि से बदनाम करने की कोशिश की गई। देश के प्रति प्रेम और भक्ति, संस्कृति के प्रति आस्था की परंपरा चलती रही और जो भी ऐसी बात करता उसे घृणा की नजर से देखा गया, उसे राजनीतिक दृष्टि से अछूत माना गया तो कुछ मायने में उसकी प्रतिक्रिया सही-गलत आती रही। इस पर मैं कुछ नहीं कहूँगा, मेरे अनुसार वो उस तरीके से नहीं होनी चाहिए, उसके कारण को भी देखना चाहिए। एक प्रसिद्ध उर्दू साहित्यकार थी हमारे देश में कुर्तुलीन

हैदर। उस मोहतरमा ने एक बार एक बड़ी अच्छी साहित्यकार उर्दू की मूलतः बंगाल की, जो अपने यथास्थिति विरोधी ऐसे विचारों के लिए जानी जाती थी, तो उस महिला के बारे में कहा कि प्रगतिशील तो हम भी हैं मगर प्रगतिशीलता का प्रचार करने के लिए कोई आए और हाथ में सिगरेट लेकर जो संस्कृति की बात करे, उनको गाली दे यह असहनीय है। जो प्रगतिशीलता का एक नशा है उसके कारण कई बार इस तरीके का जो नेरेटिव है वो प्रदूषित हो जाता है, मैं मानता हूँ उससे हमें बचना चाहिए।

प्रश्न : अष्टम अनुसूची में 14 से बढ़कर 22 भाषाएँ हो गई हैं, क्या आप सोचते हैं कि इस तरह के हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं के विभाजन को रोकने की जरूरत नहीं है, कहीं हम हिंदी को ही तो कमजोर नहीं कर रहे हैं?

उत्तर : भाषा का प्रश्न आखिरकार समुदाय से और अस्मिता से जुड़ जाता है इसीलिए इसको राजनीति का हिस्सा

बनना भी स्वाभाविक है। राजनीति के दबाव के चलते कई बार ऐसे निर्णय हो जाते हैं। इसका भाषा विज्ञान के आधार पर समर्थन हो पाएगा जरूरी नहीं, इसलिए यह मानने की आवश्यकता नहीं है मगर दूसरी ओर यह भी है कि हम मातृभाषा की बात कर रहे हैं तो देश में जितने सारे समुदाय हैं वह अपनी-अपनी मातृभाषा के बारे में सेंसेटिव बनें, यह बड़ा स्वाभाविक है। चाहे 100 लोगों की मातृभाषा हो चाहे लाखों लोगों की मातृभाषा, हर किसी को अपनी लगती है कि वह श्रेष्ठ है, वैसे मातृभाषा के बारे में भी लगना स्वाभाविक है। सही-गलत की चर्चा में नहीं जायें तो ऐसी स्थिति में उसकी जो अपनी भाषाई समझ हैं, भाषाई सोच जो है वो भी उतनी ही सरल समावेशी होगी। वो थोपने से नहीं होगा मगर मित्रता बढ़ाने से जरूर हो सकता है, तो मित्रता बढ़ाने के कुछ आयाम हो सकते हैं या उसके कुछ मार्ग हो सकते हैं। उस मित्रता को कैसे बढ़ाएँ? आज हमारे यहां हिंदी सम्मेलन होता है, मराठी साहित्य सम्मेलन होता है, गुजराती साहित्य सम्मेलन होता है मगर भाषा भगिनी सम्मेलन क्यों नहीं होता? क्यों नहीं हम चार-चार भाषाओं के चाहे दक्षिण की 4 भाषाएँ इकट्ठा आकर एक भाषा भागिनी सम्मेलन करें, यह क्यों नहीं होता? भाषाई आदान-प्रदान से ही तो हमारी एकरूपता है, वो प्रबल बन पाएगी। वैसे देखा जाए तो शायद हिंदी साहित्य सम्मेलन, जो एक दृष्टि से सबसे बड़े भाषाई समुदाय का सम्मेलन है, उसकी भी हम पहल कर सकते हैं, भाषा भगिनी सम्मेलन कर सकते हैं। क्योंकि भाषा के हाथ में हाथ डालकर संस्कृति आती है और संस्कृति के हाथ में हाथ डालकर इतिहास आता है। मतलब 'लेडी प्रोटेस्ट टू मच' यह एक मुहावरा बन गया है। अभी यह मान लीजिए कि एक हिस्टोरियल में आता है कि किसी एक्स व्यक्ति का व्यवहार 'लेडी प्रोटेस्ट टू मच' जैसा था तो आज का पाठक जिसने शेक्सपीयर पढ़ा नहीं है वह बोलेगा यह लेडीज कौन है और क्यों प्रोटेस्ट कर रही है, तो इसका मतलब यह है कि जब आप किसी भाषा का उपयोग करते हैं और उसको समझने की कोशिश करते हैं तो उसका उद्देश्य केवल अल्फावेट समझना नहीं या वाक्य का अर्थ निकालना नहीं है, बल्कि वाक्य के अर्थ के पीछे एक अर्थ है, भाव है 'रीडिंग विटविन द लाईन्स' नाम की भी एक चीज होती है, तो वो समझने के लिए आपको वो सारा समझना चाहिए। तब शायद आने वाले समय में जिनको भाषाओं का प्रचार करना है उनको भाषा के साथ-साथ संस्कृति का, सभ्यता के इतिहास का भी प्रचार करना पड़ेगा।

प्रश्न : अभी 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद आने वाले विश्व हिंदी सम्मेलन के बारे में क्या सोचती है, इसमें कैसे बेहतरी करेंगे?

उत्तर : विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन की जो परिपाटी है वो बहुत पुरानी है। इससे जुड़े सारे घटक जब तक इकट्ठा आकर इसका पुनर्विचार नहीं करेंगे, उस पर थोड़ा समय के अनुरूप मंथन नहीं करेंगे तो उसमें मात्र आईसीसीआर या किसी एक व्यक्ति या संस्था के माध्यम से परिवर्तन तो नहीं हो पाएगा, मगर चर्चा चलानी चाहिए। आपके सुझाव से मैं सहमत हूँ और इस मर्यादा के बावजूद भारतीय समाज एक उत्सवप्रिय समाज है, इसलिए हर किसी चीज से हम प्रोडक्टिविटी की अपेक्षा करें, शायद समाज की अपेक्षा नहीं रहती या किसी चीज पर इतना खर्चा हुआ, इतना समय दिया, इतने लोग आए, इसमें क्या कुछ निकला यह भी समाज के एक स्तर पर माना जाता है, कि कुछ निकलना चाहिए, क्या यह जरूरी है? हमें आनंद तो आया, चर्चा तो हुई, नेटवर्किंग तो हुआ, आकलन हुआ इसलिये कुछ निकला नहीं है ऐसा मानने की जरूरत नहीं है। मगर फिर भी मैं आपके सुझाव से सहमत हूँ, कोई भी कंक्रीट प्लान ऑफ एक्शन बने उस प्लान ऑफ एक्शन के आधार पर कुछ चीजें आगे बढ़े, फिर जब हम मिलते हैं तो उसका एक रिव्यू हो यह नहीं हो पा रहा, क्योंकि इसका जो संस्थाकरण होना चाहिए उसमें कई बार कुछ एक मर्यादाएँ रहती हैं। संस्थाकरण के लिए जो बाकी घटक आवश्यक हैं उसमें निरंतरता से प्रतिभागी होने वाले लोगों में एक आपसी मंथन करते हुए इसकी एक रूपरेखा बनानी चाहिए, तभी जाकर उसको क्रियान्वयन के धरातल पर ला सकते हैं अन्यथा यह मुश्किल है। आप जो कह रहे हैं वह बिल्कुल सही है कि समय के अनुरूप चलते हुए कैसे नई पीढ़ी में हिंदी को और जनप्रिय किया जा सके, जैसा कि हिंदी में मिलावटी भाषाओं का प्रचलन ज्यादा होता है क्योंकि अपनी भाषा में जो शब्द है वह तुरंत हमारे ध्यान में नहीं आता क्योंकि वो कान में नहीं

पड़ता, क्यों नहीं पड़ता, क्योंकि लोग बोलते ही नहीं, हम यह नहीं कह रहे कि टेबल को कोई हिंदी शब्द में बोले।

लेकिन मैं आज देखता हूँ कि दिल्ली जैसे शहरों में और अन्य शहरों में भी अगर मैं किसी से पूछता हूँ कि आपके घर में कौन-कौन हैं कौन रहते हैं तो वह बोलते हैं, मदर यह करती है, फादर ये करते हैं। माता-पिता नहीं बोलते। यदि आपको माता-पिता को माता-पिता बोलने में संकोच होता है, शर्म आती है और फादर मदर बोलने में गर्व महसूस हो रहा है तो कहीं तो भूल हो रही है।

प्रश्न : हम इस सांस्कृतिक संकट से कैसे लड़ें, आपके क्या सुझाव हैं?

उत्तर : इसके प्रति आकलन बढ़ाना चाहिए जैसे हमारे शिक्षक हैं जो हिंदी न पढ़ाते होंगे, चाहे भूगोल पढ़ाएँ इतिहास पढ़ाएँ। अगर वह हिंदी के विद्यालय में पढ़ा रहे हैं तो देखें कि वो कितनी हिंदी का प्रयोग करते हैं, क्या वे हिंदी का प्रयोग नहीं करते होंगे भूगोल को पढ़ाते समय, मतलब उनकी हिंदी नाममात्र है, ज्यादातर अंग्रेजी शब्दावली का ही प्रयोग करते हैं, तो उनको रोकना चाहिए। मैं तो कहूँगा हर किसी का अगर किसी विद्यालय का घोषित रूप में हिंदी माध्यम है तो यह होना चाहिए कि उसकी हिंदी के प्रति जो सजगता है, हिंदी के प्रति जो निष्ठा है उसका भी कोई मूल्यांकन होना चाहिए अन्यथा हमारे जीते तो भाषाएँ लगभग नहीं के बराबर हो जाएँगी।

जैसे कहीं भी किसी भी समस्या के बारे में पहले तो इस विषय के संबंध में जितने प्रमुख लोग हैं उनको इकट्ठा कर समस्या का आकलन आना चाहिए और फिर जब जो आकलन बनेगा एक सामान पद्धति से विश्लेषित कर, तब जो निष्कर्ष उभर कर आएगा उसके आधार पर इस समस्या के समाधान के कुछ रास्ते तय होने चाहिए। उन रास्तों के क्रियान्वयन का दायित्व तय होना चाहिए। यदि वो दायित्व नहीं निभाया जाता है तो उसकी पूछ-परख होनी चाहिए। इतना अगर हम नहीं कर पाएँगे तो हमारे रोने-धोने का कोई तात्पर्य नहीं होगा अन्यथा अरे-अरे भाषाएँ मर रही है यह सब तो हम मराठी में भी सुनते हैं।

यह सत्य है कि भाषाओं को मिटाने का काम बहुत सारी ताकतें करती हैं, मगर उनसे जूझने का काम तो हमको ही करना पड़ेगा। उस काम को आउटसोर्स नहीं कर सकते, भले वो दायित्व किसी और को, चाहे सरकार को या सम्मेलन को हो। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता हिंदी साहित्य के बारे में ऐसा सोच नहीं सकते, यह हमारा काम है उसका स्वामित्व हम सबको लेना है।

प्रश्न : अध्यक्ष महोदय, अंतिम प्रश्न के रूप में मैं, यह जानना चाहता हूँ कि पचास साल के बाद भारत की संस्कृति और भाषा को किस रूप में कल्पित करेंगे, आप कैसी कल्पना कर रहे हैं?

उत्तर : मुझे ऐसा लगता है कि जो होना चाहिए, हो सके तो है उस पर मैं अपना ध्यान केंद्रित करूँगा। होना यह चाहिए कि आज विश्व के हर कोने में जो भारत के प्रति उसकी संस्कृति सभ्यता और देश के प्रति जो आकर्षण है उसको स्वेच्छा के रास्ते से हमें आकलन के स्तर तक लाना चाहिए। इससे चीजें आसान हो जाएँगी और आकलन करने का अनुभव भी बहुत महत्वपूर्ण होगा। जब ओबामा महोदय भारत आए थे उसके पहले और बाद में उनकी भारत को देखने की दृष्टि में बहुत अंतर है। बहुत बदलाव आया है, इसलिए भारत को समझना, भारत को समझने में हिंदी का समझना भी है, तो भारत को समझ पाना केवल किताबें पढ़कर, वेबसाइट देखकर नहीं संभव है। भारत एक अनुभव है, अनुभव को लेने के जितने अवसर का अधिक निर्माण करेंगे, जितना प्रेम, सद्भावना व अपनत्व बढ़ाएँगें, इसके माध्यम से जितने विश्व समुदाय को हम अपने निकट लाएँगे भारत का सांस्कृतिक परिदृश्य को बढ़ाने में समस्या नहीं आएगी। भारत का आकलन बनाने में इंडोलॉजी है, हिंदी है, संस्कृत है। ऐसी दस विद्याएँ हमारे पास हैं जिनका आकलन हमें करना चाहिए। कलाकारी, कारीगरी भी तो हमारे सांस्कृतिक दूत हैं, मगर कई दूतों को हम ही नहीं पहचानते तो उनको विदेश में भेजने की बात ही दूर रह जाती है। इसको गलत अर्थ में नहीं लेना चाहिए, सही अर्थ में बता रहा हूँ, भारत नाम की जो विश्व विषय वस्तु है उसको विश्व के बाजार में स्वागत योग्य बनाने के लिए उसके प्रति एक माहौल खड़ा करने की जरूरत है और वो हम उसको जरूर खड़ा कर सकते हैं। यह जितनी रंग-बिरंगी है उतनी ही आसानी से संभव है, मगर इसके लिए कोशिश करनी चाहिए।

***

भारत के पहले सिने सुपर स्टार–राजेश खन्ना

पंकज शुक्ला

राजेश खन्ना ने 169 फिल्मों में अभिनय किया। 106 फिल्मों में वह अकेले हीरो थे, 22 फिल्मों में दो हीरो थे। उनकी 72 फिल्मों ने गोल्डन जुबली और 22 फिल्मों ने सिल्वर जुबली मनाई। 1971 में एक वर्ष में 7 फिल्में लगातार हिट हुईं। 1969 में ''आराधना'' से उन्होंने शिखर छुआ। राजेश खन्ना को भारत के पहले सुपर स्टार की उपाधि इसलिए मिली थी क्योंकि उन्होंने 1969 से 1972 के दौरान 15 सुपर हिट फिल्में लगातार दीं।

सम्पर्कः फ्लैट जे–9, 39, अहीरापुरा, जहांगीराबाद, भोपाल–462008, म.प्र, मो: 8827363956

हिंदी सिनेमा के इतिहास में ऐसी करिश्माई घटना कभी नहीं घटी थी और उसके बाद आज तक वह दोहराई नहीं जा सकी। यह करिश्माई घटना थी राजेश खन्ना के रूप में पहले सुपर स्टार का उदय। भारतीय सिनेमा ने साठ का दशक समाप्त होते–होते कई दौर देख लिये थे। कई दौर में कई सितारे हुए, बड़े–बड़े सितारे, लेकिन 1969 में ''आराधना'' से इस नये अभिनेता ने विशाल दर्शक समुदाय को जो दीवाना बनाया उसे शब्दों में बयान करना मुमकिन नहीं है। इसे लोकप्रियता का जुनून कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।

राजेश खन्ना से पहले भी मायानगरी में कई स्टार हुए, जिनके करोड़ों प्रशंसक थे, लेकिन जिस तरह की ''मास हिस्टीरिया'' उनके लिये देखी गई वह बेमिसाल थी।

एक ऐसा दौर भी रहा जब राजेश खन्ना ने लाखों करोड़ों दिलों पर राज किया और अपने दिलकश अंदाज तथा संवाद अदायगी से दर्शकों को दीवाना बनाया।

राजेश खन्ना जब स्कूल में पढ़ते थे, तब से ही उन्हें नाटकों में अभिनय करने में रुचि थी। उन्होंने के.सी. कॉलेज के दिनों में स्टेज पर धूम मचा दी थी। इसके बाद वह इब्राहिम अलकाजी के थिएटर ग्रुप से जुड़ गये।

1965 में युनाईटेड प्रोड्यूसर्स और फिल्म फेयर द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्रतियोगिता से उनका फिल्मों में प्रवेश हुआ था। इसमें दस हजार युवाओं (प्रतिभागियों) ने भाग लिया। इसके फाइनल में पहुंचने वाले आठ प्रतिभागियों में राजेश शामिल थे और हजारों में एक माने गए।

1966 में 24 बरस की उम्र में उन्हें प्रतिभा दिखाने का अवसर मिल ही गया।

सबसे पहले उन्हें जी.पी. सिप्पी ने 'राज' फिल्म के लिए साइन किया, जिसमें बबीता हीरोइन थी।

उनकी पहली प्रदर्शित फिल्म ''आखिरी खत'' 1967 में 40वें ऑस्कर अकादमी पुरस्कारों के लिए विदेशी भाषा की सर्वश्रेष्ठ फिल्म के वास्ते भारतीय प्रविष्टि थी।

‘राज’, ‘आखिरी खत’, ‘बहारों के सपने’, ‘‘आराधना’’ में अभिनय करके राजेश खन्ना उस मुकाम तक पहुंचे जहां शायद ही कोई अभिनेता पहुंचे।

राजेश खन्ना ने 169 फिल्मों में अभिनय किया। 106 फिल्मों में वह अकेले हीरो थे, 22 फिल्मों में दो हीरो थे। उनकी 72 फिल्मों ने गोल्डन जुबली और 22 फिल्मों ने सिल्वर जुबली मनाई। 1971 में एक वर्ष में 7 फिल्में लगातार हिट हुईं। 1969 में ‘‘आराधना’’ से उन्होंने शिखर छुआ। राजेश खन्ना को भारत के पहले सुपर स्टार की उपाधि इसलिए मिली थी क्योंकि उन्होंने 1969 से 1972 के दौरान 15 सुपर हिट फिल्में लगातार दीं।

राजेश खन्ना की जो शानदार फिल्में मानी जाती हैं, वह हैं: ‘आनंद’, ‘आराधना’, ‘खामोशी’, ‘हाथी मेरे साथी’, ‘बावर्ची’, ‘आविष्कार’, ‘कटी पतंग’, ‘आन मिलो सजना’, ‘अंदाज’, ‘छोटी बहू’, ‘दो रास्ते’, ‘दुश्मन’, ‘अमर प्रेम’, ‘सफर, दाग’, ‘आपकी कसम’, ‘रोटी’, ‘सौतन’, ‘कुदरत’, ‘महबूबा’, ‘राजपूत’, ‘अवतार’, ‘थोड़ी सी बेवफाई’ आदि।

1971 एक ऐसा वर्ष रहा जो भारतीय सिनेमा में एक नया कीर्तिमान बनाने वाला रहा। 1971 में राजेश खन्ना की एक के बाद 6 फिल्में सुपर हिट रहीं–‘कटी पतंग’, ‘आनंद’, ‘आन मिलो सजना’, ‘महबूब की मेंहदी’, ‘हाथी मेरे साथी’ और ‘अंदाज’। इसके बाद भी हिट फिल्मों का दौर जारी रहा। इन फिल्मों में थीं—‘दो रास्ते’, ‘दुश्मन’, ‘बावर्ची’, ‘मेरे जीवन साथी’, ‘जोरू का गुलाम’, ‘दाग’, ‘नमक हराम’ और ‘हमशक्ल’।

राजेश खन्ना ने रोमांटिक हीरो के रूप में बेहद सफलता अर्जित की थी लेकिन अलग-अलग मूड की फिल्में करने में नहीं हिचकिचाये। जैसे फिल्म ‘‘धनवान’’ में निगेटिव भूमिका की तो फिल्म ‘‘बाबू’’ में एक रिक्शा चालक बने। बल्कि ‘‘रोटी’’, फिर वही रात’’ और ‘‘अंगारे’’ जैसी अपराध प्रधान फिल्में भी की। सामाजिक फिल्मों में भी भूमिका निभाई ‘‘अवतार’’, ‘‘नया कदम’’ और ‘‘आखिर क्यूं’’ जैसी सामाजिक फिल्में जबरदस्त रूप से सफल रही थीं।

जी.पी. सिप्पी की फिल्म ‘‘राज’’ (1967) में राजेश ने मरने वाले नायक की भूमिकायें निभाई थी। हालांकि इस भूमिका में वह फ्लॉप रहे। लेकिन 1969-70 में प्रदर्शित फिल्मों ‘‘आराधना’’ और ‘‘आनंद’’ से वह मरने वाले नायक की भूमिका में लोकप्रिय हुए।

इसके बाद तो राजेश खन्ना को ऐसी भूमिका करने की आदत पड़ गई। कहा जाता है कि 1973 में ऋषिकेश मुखर्जी की फिल्म ‘‘नमक हराम’’ में वह इस बात पर अड़ गये कि फिल्म

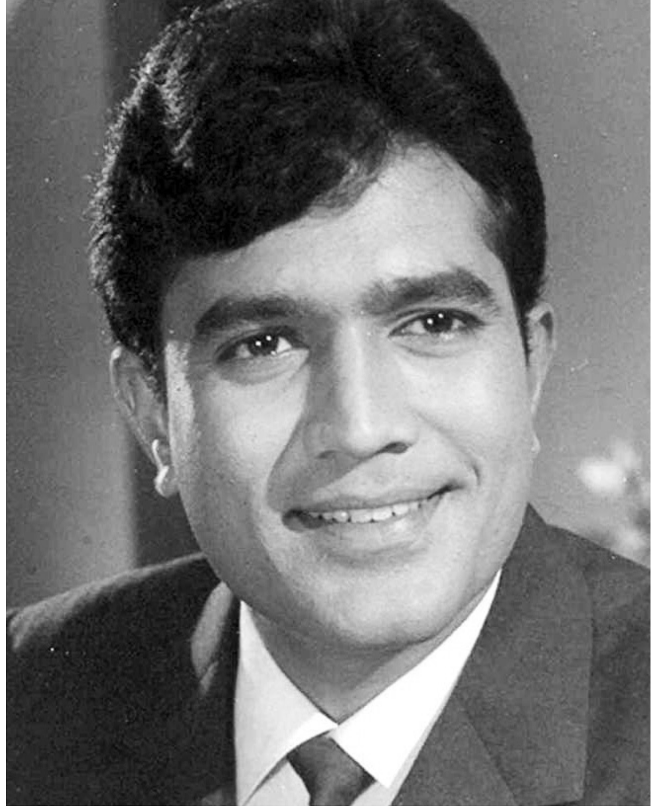

में अमिताभ बच्चन के स्थान पर उन्हें मारा जाये। वह पांच साल सुपर स्टार रहे, लेकिन मरने वाले नायक की जैसी लोकप्रियता उन्होंने हासिल की, वैसी किसी नायक को नहीं मिल सकी।

राजेश खन्ना मार्मिक दृश्यों में जान डाल देते थे और परदे पर उनकी मौत इतनी स्वाभाविक और पीड़ादायक होती थी कि दर्शकों की आंखों में उनके चेहरा सिमट आता है।

फिल्म ‘‘आनंद’’ हो या ‘सफर’, ‘खामोशी’ हो या ‘नमकहराम’, ऐसा अनुभव होता था कि इस प्रकार के दृश्य केवल राजेश खन्ना ही कर सकते हैं।

‘‘आराधना’’ के बाद उनकी फिल्म आई ‘‘हाथी मेरे साथी’’। यह फिल्म भी सुपरहिट रही और उस समय तक सबसे अधिक कमाई करने वाली फिल्म बनी। सलीम-जावेद ने इस फिल्म की पटकथा लिखी थी। पटकथा लेखक सलीम और जावेद को पहली बार मौका देने का श्रेय राजेश खन्ना को ही है।

राजेश खन्ना के स्टारडम में गीत-संगीत का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसका श्रेय संगीतकार आर. डी. बर्मन, गायक किशोर कुमार और गीतकार आनंद बख्शी को जाता है।

उनकी अधिकांश फिल्मों में संगीत सचिन देव बर्मन, आर.डी. बर्मन और लक्ष्मीकांत प्यारेलाल ने दिया। राजेश खन्ना की 32 फिल्मों में आर.डी. बर्मन ने संगीत दिया था। वहीं उनकी 91 फिल्मों में पार्श्व स्वर किशोर कुमार का था। उनकी लगभग सभी फिल्मों में किशोर कुमार ने ही गाने गाये थे।

1969 में 'आराधना', 'रूप तेरा मस्ताना' और 'मेरे सपनों की रानी' के लिये राजेश और किशोर कुमार साथ-साथ आये थे। पिता सचिन देव बर्मन की अस्वस्थता के कारण आर.डी. बर्मन ने फिल्म के साउंड ट्रेक को अंतिम रूप दिया था। यह फिल्म किशोर कुमार का पुनरूत्थान सिद्ध हुई। क्योंकि इसी से वह राजेश खन्ना के आधिकारिक पार्श्व गायक बने। किशोर के स्वर राजेश खन्ना के पहचाने जाने लगे।

अपनी फिल्मों के संगीत को लेकर राजेश हमेशा सजग रहते। वह गाने की रिकार्डिंग के वक्त स्टूडियो में ही रहना पसंद करते थे और अपने सुझावों से संगीत निर्देशकों को अवगत कराते रहते थे। राजेश खन्ना और किशोर कुमार बेहद अच्छे मित्र थे, किशोर कुमार ने इसीलिए राजेश खन्ना द्वारा प्रोडयूस की गई फिल्म ''अलग अलग'' के गीतों को बिना पारिश्रमिक लिये गाया। किशोर कुमार जब ''ममता की छांव'' का निर्देशन अधूरा छोड़कर दिवंगत हो गये थे तब राजेश खन्ना ने किशोर कुमार की इस अधूरी फिल्म को पूरा करने में लीना चंदावरकर और अमित कुमार की मदद की।

फिल्म ''आनंद'' के लिये ऋषिकेश मुखर्जी की पहली पसंद काका नहीं थे। आनंद के लिये उनकी असली पसंद किशोर कुमार थे लेकिन एक गलतफहमी की वजह से ऋषि दा उनसे नाराज हो गये थे। दरअसल किशोर कुमार ने एक बंगाली व्यवसायी के लिए स्टेज शो किया था, जिसके भुगतान को लेकर वह नाराज थे। उन्होंने अपने गेट कीपर से उस बंगाली को बंगले में घुसने देने के लिए मना किया था। ऋषि दा इस अभद्र व्यवहार से आहत हुए और किशोर कुमार के साथ काम नहीं किया।

फिर ऋषि दा ने ''आनंद'' में राजेश खन्ना से यह भूमिका कराई। जिसमें एक लाइलाज बीमारी से नायक पीड़ित तो रहा है लेकिन जिंदादिल इंसान के रूप में सबको हंसी-खुशी देता है।

फिल्म ''आनंद'' और उसमें राजेश खन्ना का किरदार कालजयी बन गये। यह उनकी सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में प्रमुख रही।

मर्मस्पर्शी फिल्म ''आनंद'' के गीत और संवाद बहुत लोकप्रिय हुए। जैसे राजेश का अपने साथी अमिताभ को ''बाबू मोशाय'' कहना।

राजेश खन्ना का एक खुशहाल पंजाबी युवक का किरदार, राजकपूर से प्रेरित था। जबकि उसके बंगाली दोस्त भास्कर का किरदार जिसे अमिताभ बच्चन ने निभाया था, वह खुद निर्देशक ऋषिकेश मुखर्जी से प्रेरित था।

राजेश को ''आनंद'' में यादगार अभिनय के लिये, वर्ष 1971 में लगातार दूसरी बार सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का फिल्मफेयर पुरस्कार दिया गया था।

राजेश खन्ना के निधन पर मीडिया ने उन्हें आनंद ही संबोधित किया और आनंद के संवादों से जोड़ा। मीडिया की सुर्खियों के कुछ उदाहरण ''आनंद कभी मरते नहीं'', ''आनंद में डुबोकर आनंद विदा हो गया...'' ''जिंदगी कैसी है पहेली'', ''ऊपर वाले ने खींच ही ली काका के जीवन की डोर।''

''आनंद'' में राजेश खन्ना द्वारा बोले गये संवाद लोकप्रिय हुए-''बाबू मोशाय, जिंदगी और मौत ऊपर वाले के हाथ में है। इसको न आप बदल सकते हैं और न मैं। हम सब तो रंगमंच की कठपुतलियां हैं, जिनकी डोर ऊपर वाले की उंगलियों से बंधी है। कब, कौन, कैसे उठेगा, कोई नहीं बता सकता।

राजेश खन्ना ''आनंद'' में तय मौत के सामने अपराजेय लगे। उनका जो चरित्र था उसे वह ही निभा सकते थे। शायद ''आनंद'' हिंदी की पहली अस्तित्ववादी फिल्म रही और राजेश उस अस्तित्ववादी नायक के अवतार रहे।

अमिताभ बच्चन ने अपनी श्रद्धांजलि के अंतर्गत ''आनंद'' का भी उल्लेख किया—''आनंद में उनके साथ काम करने का मौका मिलना चमत्कार ही था। उनके साथ काम करने से इंडस्ट्री में मेरा कद बढ़ा। मुझे याद है कि फिल्म आनंद का अंतिम दृश्य फिल्माया जा रहा था। आनंद की मौत हो जाती है और मुझे भावुक होना था। उस समय मैं महमूद भाई के ही घर पर रहता था। अभिनय की बहुत जानकारी नहीं थी सो मैंने महमूद भाई से मदद मांगी। उन्होंने मुझसे कहा सिर्फ सोचो कि राजेश खन्ना नहीं रहे। बस और कुछ नहीं। आज वाकई इस बात की गहराई का अंदाजा हो रहा है।''

1969 में शक्ति सामंत निर्देशित फिल्म ''आराधना'' ने जबरदस्त सफलता अर्जित की। राजेश खन्ना भारतीय सिनेमा के उभरते स्टार बन गये। ''आराधना'' उस दौर में सर्वाधिक लोकप्रिय रोमांटिक फिल्म मानी गई और राजेश, शर्मिला की जोड़ी बन गई।

''आराधना'' फिल्म से काका उर्फ राजेश कामयाबी की बुलंदी पर पहुंच गये और समालोचक उन्हें बॉलीबुड का ''पहला सुपर स्टार'' कहने लगे। इस फिल्म में जहां राजेश ने प्रेमी और पुत्र वहीं नायिका शर्मिला टैगोर ने प्रेमिका और मां की प्रभावशाली भूमिका निभाई।

''आराधना'' ने राजेश खन्ना को सुपर स्टार का दर्जा तो दिलाया ही गायक किशोर कुमार के कैरियर को भी नई ऊँचाई दी। इसके बाद तो दोनों की जोड़ी ने अनेक फिल्मों में अपने फन का ऐसा

जलवा दिखाया कि दर्शकों को एक के बिना दूसरे की कल्पना अधूरी लगने लगी।

हिंदुस्तान के दर्शकों ने ''रोमांस'' के एक ऐसे देवता का उभार देखा जो उसके आसपास का ही था।

कम लोगों को ही पता होगा कि शक्ति सामंत को ''मेरे सपनों की रानी...'' गाने के लिए राजेश खन्ना और शर्मिला टैगोर की डेट एक साथ नहीं मिल सकी थी। तब राजेश खन्ना वाला हिस्सा दार्जिलिंग के पहाड़ों में शूट किया गया, जबकि शर्मिला वाला हिस्सा, मुंबई के एक स्टूडियो में सेट खड़ा कर किया गया था। बाद में दोनों फुटेज का संपादन कर ऐसा दर्शाया गया कि वह एक ही फ्रेम में लगे।

देश के पहले रोमांटिक सुपर स्टार के प्रति दीवानगी जो फिर न दिखी, क्रेज जो कोई सोच न पाया, ऐसी छवि जो दूसरा बना न पाया। **अदायें जो दोहराई न गई—**आंखें झपका कर, गर्दन टेढ़ी कर संवाद बोलने की उनकी कला कोई दोहरा न पाया। वहीं किशोर कुमार द्वारा गाने में 'उडलई' शब्द किसी दूसरे हीरो पर जमा ही नहीं। एक खास अदा के साथ पलकें झपकाते हुए मुस्कुराकर अपने प्रेम का इजहार करते हुए रोमांटिक हीरो की उनकी छवि के दीवाने आज भी बहुत हैं।

राजेश खन्ना का मैनेरिज्म, डांस तथा डॉयलाग-डिलीवरी का अनोखा अंदाज, दिलकश मुस्कान और सिर झटकने की अदा पर लाखों लोग फिदा हुए।

राजेश खन्ना ऐसे आखिरी सुपर स्टार थे, जिन्होंने फैशन के नए मानक स्थापित किए और गुरुकुर्ता तथा कमीज पर बेल्ट पहनने का ट्रेंड चलाया।

राजेश खन्ना एक पहले सुपर स्टार का नाम तो हो ही गया था। लेकिन राजेश खन्ना एक दौर का नाम भी हो गये। इस दौर में याद आने लगती हैं—'आनंद', 'बावर्ची', 'नमकहराम', 'हाथी मेरे साथी', 'सफर' जैसी मर्मस्पर्शी फिल्में। ऋषिकेश मुखर्जी, शक्ति सामंत, असित सेन जैसे निर्देशक लोकप्रिय गीत-संगीत का दौर रचने वाले आर.डी.बर्मन, किशोर कुमार और आनंद बक्शी। प्रेम प्रधान फिल्मों की कहानियां। हिंदी सिनेमा के स्वर्णिम संगीत को समृद्ध करने वाले यादगार गीत।

बहुत कम अभिनेता ऐसे होते हैं जो एक साथ स्टारडम, करिश्मा और लोकप्रियता हासिल कर पाते हैं। राजेश खन्ना को यह सफलता मिली। जिस दौर में उनकी लोकप्रियता चरम पर थी तो कहा जाता था कि ऊपर आका, नीचे काका।

राजेश खन्ना के प्रति दीवानगी के अनेक किस्से प्रचलित हैं। अमिताभ बच्चन भी उनके दीवानों में थे, उन्होंने श्रद्धांजलि के समय वह दौर याद किया—''मैंने सबसे पहले उन्हें फिल्म फेयर मैंग्जीन के कवर पेज पर देखा था। वे फिल्म फेयर-'माधुरी' टैलेंट कांटेस्ट के विजेता थे। उसी कांटेस्ट में अगले ही साल मेरा आवेदन अस्वीकार कर लिया गया था। फिल्म आराधना की शूटिंग के दौरान मैंने उन्हें दोबारा साक्षात देखा। नई दिल्ली के कनॉट प्लेस रिवोली थियेटर में फिल्म की शूटिंग चल रही थी। राजेश के लिये उनके प्रशंसकों के जुनून को व्यक्त नहीं कर सकता। मेरी हालत यह थी कि कांटेस्ट में चयन नहीं हुआ और फिल्मों में काम करने के लिये मैं कलकत्ता की अपनी नौकरी छोड़ आया था। राजेश की एक झलक देखने के बाद मुझे अहसास हो गया था कि इस नए पेशे में जगह बनाना मेरे लिए बहुत मुश्किल होगा। कुछ समय बाद ''सात हिंदुस्तानी'' की शूटिंग शुरू हो गई। उस वक्त तक बंबई में अनवर अली ही मेरे एकमात्र मित्र थे। उन्होंने मुझे महमूद से मिलवाया। उन्हीं की बदौलत एक बार फिर राजेश खन्ना से मिलने का मौका मिला। मैंने उनसे हाथ मिलाया। यह उनके लिये एक सामान्य सी मुलाकात थी। लेकिन मेरे लिये गर्व का क्षण। ''आनंद'' में उनके साथ काम करने का मौका मिलना चमत्कार ही था। उनके साथ काम करने से इंडस्ट्री में मेरा कद बढ़ा।''

हंसमुख चेहरा, अलग अंदाज और शानदार अभिनय के आधार पर राजेश खन्ना ने एक से अधिक दशक तक दर्शकों के दिलों पर राज किया। एक दौर ऐसा भी आया कि जब लोग राजेश खन्ना की एक झलक पाने को मर मिटते थे। उनकी महिला प्रशंसक या दीवानियां, किसी भी अन्य सुपर स्टार से अधिक मानी जाती है। फिल्म उद्योग में स्टारडम का मतलब जानने और कामयाबी को भुनाने के लिये सबसे अच्छा आदर्श हैं राजेश खन्ना।

गंभीर समीक्षकों ने इस बात का भी अध्ययन किया कि जब राजेश को अपूर्व लोकप्रियता मिली तब देश और फिल्म जगत एक नाजुक दौर से गुजर रहा था, फिर भी वो कौन से कारण हैं जिस आधार पर राजेश खन्ना, भारत के पहले सिने-सुपर स्टार बने?

एक लेखक का विश्लेषण है कि—''दरअसल जब राजेश खन्ना आए थे, नेहरू युग के नायकों का लगभग समापन का दौर था। नेहरू युग के नायक हाशिए पर चले गये थे और नये नायकों का उदय नहीं हुआ था। ठीक निराशा के बीच भारतीय मध्यवर्ग के मानस और मर्म को मूर्त करता हुआ पहली बार साधारण शक्ल सूरत का नायक वामन से विराट हो गया।''

एक वरिष्ठ फिल्म का समीक्षक उस दौर की भावुकता को याद

करते हैं—''उस दौर में गुलशन नंदा की भावुकता में डूबी लुगदी पसंद की जाती थी। उन्हीं की लिखी ''कटी पतंग'' और ''दाग'' में राजेश खन्ना ने अभिनय किया था। आंसुओं में डूबी आवाज और लरजते लबों ने भावुकता का तूफान खड़ा किया।

हिंदी फिल्मों के पहले सुपर स्टार राजेश खन्ना ने जो स्टारडम हासिल किया, वैसी लोकप्रियता पूरी दुनिया में बहुत कम सितारों को नसीब हुई है।

1966 से 1971 के बीच राजेश खन्ना की 15 फिल्में लगातार हिट हुई थीं। यह कीर्तिमान आज तक कोई तोड़ नहीं पाया है। अभिनेता के रूप में उनकी लोकप्रियता का यह आलम था कि बड़े-बड़े स्टार उनकी चमक के सामने फीके पड़ गये थे। वह बॉलीवुड के संभवतः पहले ऐसे अभिनेता थे, जिन्हें देखने के लिए लोगों की कतारें लग जाती थीं और युवतियां अपने खून से उन्हें पत्र लिखा करती थीं।

राजेश खन्ना के प्रति असीम-लोकप्रियता की लहर पैदा होने की वजह यह भी अनुभव की गई कि—राजेश खन्ना के रूप में हिंदी सिनेमा को पहली बार ऐसा अभिनेता मिला था जो बेतकल्लुफ होने के साथ निहायत आत्मीय भी हो सकता था।

राजेश खन्ना ने सुपर हिट फिल्मों का दौर रच दिया। आंखें बड़ी करके मासूमियत छलकाना, आंखे मिचमिचाते हुए एक खास अंदाज में डायलॉग बोलना, रोमांटिक हीरो की भूमिकाएं निभाते हुए भी आम आदमी वाला टच बनाये रखना, ये और ऐसे ही कुछ कारण थे, जिन्होंने राजेश खन्ना का फिनोमिनन रचने में योगदान दिया। फिर लोकप्रिय स्क्रिप्ट, सुपर हिट गीत, संगीत ग्लैमर टपकाती चोटी की हीरोईनें और प्लेबैक के लिये किशोर कुमार का जादू तो था ही।

लेकिन समय का चक्र घूमने लगा, एक नया दौर दस्तक देने लगा था। 1973 के दौर में देश की सामाजिक-राजनैतिक स्थितियों में परिवर्तन होने लगा। 1973 में फिल्म ''जंजीर'' के हिट होने के साथ अमिताभ बच्चन के एंग्रीयंग मैन दौर की शुरुआत हो चुकी थी। ऐसे समय में अपने स्टारडम में डूबे राजेश खन्ना यथार्थ से दूर होते जा रहे थे। इधर सलीम-जावेद की पटकथायें-जंजीर, दीवार, त्रिशूल से नायक की आक्रोशमय छवि दर्शक पसंद करने लगे। राजेश खन्ना धूमकेतु की तरह उठते गये और उनका पतन भी उतनी ही तेजी से हुआ। दर्शक परदे पर ''लवर बाय'' के विपरीत एंग्री यंगमैन की छवि को पसंद करने लगे और राजेश तो 'आराधना' और 'आनंद' के लिये ही जैसे बने थे, एंग्री यंगमैन के रूप के लिये नहीं।

अमिताभ बच्चन में चातुर्य और समय के साथ समरस होने का जो असाधारण कौशल रहा वह राजेश नहीं दिखा पाये और अपने अतीत में डूबे रहे।

फिर भी राजेश खन्ना ने दूसरी पारी की शुरुआत की। 1983 में ''सौतन'' की सफलता से वह कुछ स्थापित हुए। फिर-अवतार, अगर तुम न होते, मास्टर जी, आखिर क्यों, अमृत जैसी सफल फिल्में दी। उन्होंने फिल्में भी प्रोड्यूस कीं। हालांकि उसमें अधिक सफलता नहीं मिली। मगर सफलता का वह दौर आने वाला नहीं था, नहीं आया।

संक्षेप में कहें तो राजेश खन्ना का जीवन कुछ वर्षों की सफलता के बाद गुमनामी की लंबी अंधेरी रात की कहानी है।

यह भी जाहिर हो गया कि राजेश खन्ना का जीवन स्टारडम और असफलताओं के बाद तन्हाइयों तथा उपेक्षा में बीता और फिर गंभीर बीमारियों से घिर गये और ऊपर वाले ने उनकी जिंदगी की डोर खींच ली। 69 साल के काका ने मुंबई के बांद्रा स्थित अपने प्रिय बंगले ''आशीर्वाद'' में 18 जुलाई 2012 को अंतिम सांस ली। सड़क से लेकर संसद तक गहरा शोक व्यक्त किया गया। अमिताभ बच्चन, धर्मेंद्र उनके अंतिम दर्शन के समय रो पड़े, अनेक कलाकार दर्शक भावुक हो गये।

उनका देहावसान होते ही उनका महत्व, अतीत की स्मृतियां रेखांकित हुईं।

कई वर्षों की गुमनामी के बाद भी, चकाचौंध से भरी दुनिया में उनकी चमक इतनी तेज और इतनी दूर तक रही कि आज तक उसके किस्से कहे-सुने जाते हैं।

शोक के साथ सभी ने स्वीकारा कि भारत का असली और इकलौता स्टार नहीं रहा। रोमांस के बादशाह को याद रखेगा जमाना।

फिल्म कर्मियों ने भी स्वीकार किया—''राजेश खन्ना से पहले देव आनंद, दिलीप कुमार और अशोक कुमार जैसे बड़े सितारे थे। लेकिन उनके जैसी लोकप्रियता शायद ही किसी को मिलेगी।'' वह हिंदी सिनेमा में सुपर स्टार परंपरा को शुरू करने वाले बन गये।

राजेश खन्ना अंतिम समय तक बदले हुए समाज में जगह तलाशने को तड़पते रहे। यह तड़प भी उनके आखिरी काम में दिख जाती है। हालांकि उनका स्टारडम स्थान बहुत छोटा रहा लेकिन वो इतना प्रभावी और गहरा रहा कि हिंदी फिल्म जगत में वो दौर एक किंवदंती बन गया और सिने इतिहास में वो दौर हमेशा यादगार व महत्वपूर्ण दौर के रूप में दर्ज रहेगा।

***

चौरासी के दंगे के तुरंत बाद डायरी के पृष्ठ

जगमोहन सिंह खन्ना

1984 में लेखक

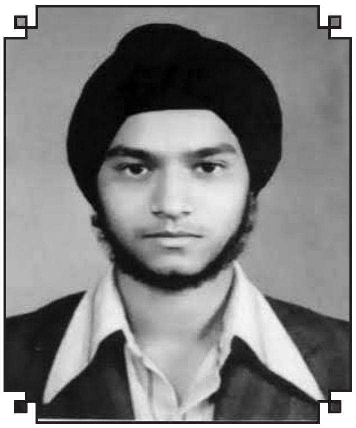

2018 में लेखक

सम्पर्कः फ्लैट-25, लहनासिंह मार्केट, मल्कागंज चौक के पास, दिल्ली-110007, मो. 9871199488, ई-मेलः jskhanna007@gmail.com

आज से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व जब समस्त हिंदू धर्म पर अत्याचार हो रहे थे, जब हिंदू धर्म के लोगों द्वारा अपने ऊपर किये जा रहे जुल्मों से बच पाना असंभव हो रहा था, घर लूटे जा रहे थे, घर जलाए जा रहे थे, इंसानी ज़िंदग़ियों को जिंदा जलाया जा रहा था, अस्मत लूटी जा रही थी, जिंदगी मौत से भी बदतर थी। उस समय जरूरत हुई कि इस हिंदू समाज से कुछ वीर लोग आगे आएं जो इस बर्बरता का विरोध करें, समाज का नेतृत्व करें, अन्याय से लड़े, बहन-बेटियों की रक्षा करें, कौम के लिए बलिदान दें। ठीक उसी समय, विपत्ति के समय में हिंदुओं में से कुछ वीर लोग आगे आए, जिन्होंने समाज का नेतृत्व किया। उन्हीं हिंदू वीरों को एक पहचान दी गई जिसे कौम का आम आदमी आसानी से पहचान सके, जिसको अपने आगे कर आम इंसान हिम्मत रख सके, अन्याय का विरोध कर सके। वो वीर हिंदू समाज की सेना बने, प्रहरी बने। उन वीरों को पहचान हमारे गुरू गोविंद सिंह जी ने। उन चुने हुए हिंदुओं को पहचान के रूप में दिया गया पांच तत्वों का चिन्ह केश, कंघा, कृपाण, कड़ा व कच्छा।

इस तरह से स्थापना हुई सिख समाज की और अपनी जाति की रक्षा के लिये सिखों ने जो अदम्स साहस का परिचय दिया, जो बलिदान दिये, जो नेतृत्व दिया उसे समाज का हरेक व्यक्ति जानता है उसकी कद्र करता है, उसका सम्मान करता है। कई शताब्दियों से आज तक सिख कौम ने जो साहस और बलिदान कर रास्ता गुरू नानक से लेकर गुरू गोविंद सिंह तक, और तब से अब तक कभी महाराजा रणजीत सिंह के रूप में, कभी शहीद भगत सिंह के रूप में, कभी शहीद ऊधम सिंह के रूप में और कभी सेना के जवानों के रूप में समाज के सामने पेश किया है उस पर एकाएक प्रश्नचिन्ह लग गया है पिछले कुछ वर्षों की, कुछ मुट्ठी भर सरफिरे असामाजिक तत्वों की गतिविधियों से, उनके द्वारा की गई शर्मनाक हरकतों से।

इन्हीं उग्रवादियों द्वारा एक शर्मनाक, इंसानियत की हद से परे, मानवीय मूल्यों को ताक पर रख कर की गई इंदिरा गांधी की हत्या, जिसने सारे हिंदू समाज और सिख कौम तक का सिर शर्म

से झुका दिया। वफादारी की मिसाल कायम करने वाले हमारे पूर्वजों के नाम पर कलंक का टीका मढ़ दिया है, इन बेकाबू, बेलगाम अमानवीय तत्वों ने।

जिसका दंड भुगतना पड़ा है पूरे समाज को, वही कौम जिसे हिंदू समाज ने आदर व सम्मान से अपने सिर पर ताज बना रखा है। उसी कौम पर एक बार फिर अमानवीय व अमानुषिक जुल्म किये गए देश में पनपे हुए गुंडा तत्वों द्वारा, उन तत्वों द्वारा जिनका कोई धर्म नहीं होता, जिनका कोई मजहब नहीं होता, जो इंसानियत की हद से कोसों दूर होते हैं, वो तत्व हमेशा तत्पर रहता है कि कब कोई मजहब गुमराह हो, कब कोई इंसान कमजोर पड़े और उसको चाट लिया जाए।

देश और राजधानी के विभिन्न हिस्सों में जो कुछ हुआ ऐसा लगता था कि एक बार फिर इतिहास जिंदा होकर सामने आ गया है, पिछली शताब्दियों के वो हैवान, जिनकी दहशत भरी कहानियाँ हम आज केवल किताबों में पढ़ते हैं, आज जिंदा हो कर के, बीसवीं शताब्दी की लोकतंत्र की जड़ें उखाड़ कर के, तमाम मानवीय मूल्यों को अपने पैरों तले रौंदते हुए बिजली की तरह, आंधी की तरह सिख समाज पर टूट पड़े हों।

यह सब इतनी तेजी से हुआ कि आम हिंदू भाई, देश के आम समझदार नागरिक को संभलने का मौका ही नहीं मिला। लगता था कि पूरे समाज, पूरे देश, पूरी इंसानियत को लकवा मार गया है, समय रुक गया था, इतिहास का एक विकृत दृश्य लौट आया था। इस दावानल की चपेट में सिख समाज तो ग्रसित हुआ ही किंतु उस सिख कौम को बचाने, रक्षा करने के लिए जो वीर हिंदू आगे आए उन्हें भी असामाजिक तत्व काल के हवाले कर गए।

एक बार फिर आम हिंदू असहाय, निरीह प्राणी की भांति चुपचाप दिलों व आंखों में दर्द लिए इस आंधी को न रोक सका, फिर भी आम हिंदू की यही कोशिश रही कि भले ही वे मकान लुटने से न बचा सके, भले ही वे मकान जलने से न बचा सके पर उनकी कोशिश यही रही कि ये सिख जिंदगियाँ किसी तरह बचा ली जाएं।

एक बात तो साफ जाहिर है कि उन तमाम लोगों ने जिन्होंने पिछले कई वर्षों से पंजाब में जो अराजकता का वातावरण तैयार किया है उन्होंने अपने घटिया व नापाक इरादों के आगे उनका विरोध करने वाले, किसी भी हिंदू या सिख को नहीं छोड़ा है। राजधानी में व देश के किसी भी हिस्से में जहां भी आम सिख या हिंदू नागरिक ने उनका विरोध किया उन्हें मौत की नींद सुला दिया गया।

समस्या का एक खतरनाक पहलू यह रहा कि आम सिख उन सिख उग्रवादी गतिविधियों का विरोध नहीं कर सका क्योंकि उग्रवादियों के हाथ, उनकी पहुंच कानून से भी आगे पहुंच चुकी थी, हिट लिस्ट बनाना, सिनेमा घरों में बम फोड़ना, बसों से निकाल कर हिंदू सिखों का कत्ल करना, सरकारी तंत्र में बैठे सिख अफसरों की हत्या करना, पूरे समाज में दहशत फैलाने के लिये काफी था। समस्या का दूसरा खतरनाक पहलू अब पैदा हो गया कि इन्हीं आम सिखों पर गुंडा तत्वों द्वारा प्रहार किया गया।

आम हिंदू व सिख के बीच जो लंबी दरार पैदा करने की साजिश असामाजिक तत्वों द्वारा की गई, आज जरूरत है कि वे सब हिंदू व सिख जो अमन व चैन से आने वाले जिंदगी को गुजारना चाहते हैं वे सब एक जुट होकर एक दूसरे का हाथ थामे, मैदान में आएं। उन हैवानी शक्तियों का डटकर मुकाबला करें जो एक-एक कर पूरे इंसानी समाज को लील जाना चाहते हैं।

आज के वातावरण में जरूरत इस बात की है कि हम सिख हिंदू इस तरह की मिली-जुली कोशिशें करें कि हम लोगों के बीच जो असामाजिक तत्व अलग-अलग रूपों में छिपे बैठे हैं, चाहे वो स्थानीय नेता के रूप में हों, चाहे वो नागरिक के रूप में हों, चाहे वो सरकारी तंत्र में हों, उनकी हरकतों का पर्दाफाश करें, उन्हें समाज के सामने नंगा करें, उनका सामाजिक बहिष्कार करें, सुदृढ़ व जागरुक प्रशासन बनाने के लिये नए सिरे से कोशिश करें। किसी और पर निर्भर रहने की अपेक्षा कालोनी स्तर पर सुरक्षा व अमन की कार्यवाही करें।

वो वक्त फिर आन पड़ा है कि सारी हिंदू-सिख कौम सिर पर पगड़ियां बांध कर कौम के वीर प्रहरी के रूप में सामने आएं और उन शक्तियों को कुचल दें जो कभी मजहब के नाम पर, कभी राजनीति के नाम पर, हमें गुमराह कर रहे हैं।

आज जरूरत है उस कहानी को अमल में लाने की जो हम वर्षों से अपने बड़े बुजुर्गों से सुनते रहे हैं कि हम अलग-अलग लकड़ी होकर टूटने के बजाय लकड़ियों का गट्ठर बनें ताकि कोई भी हैवानी ताकत किसी मजहब, किसी राजनैतिक बलबूते पर हमें तोड़ न सके, दफन न कर सकें।

ऐसे समय में मुझे किसी शायर की पंक्तियां याद आ रही हैं-

मजहब कोई लौटा दे, और उसकी जगह दे दे।
तहजीब सलीके की, इंसान करीने के।

4 नवंबर, 1984

***

मैं जब शायर बना

डा. कुंअर बेचैन

" शाम को 5 बजे से यह फैंसीड्रेस कार्यक्रम का आयोजन था। मैं साढ़े चार बजे घर से निकला। अचकन, पाजामा और टोपी पहनकर। चेहरे पर पूरी तरह दाढ़ी मूंछें लगाकर। एक हाथ में अटैची लेकर और दूसरे हाथ में एक छड़ीनुमा बेंत लेकर, जिसे बूढ़े लोग स्वयं को संभालने के लिए रखते हैं। मेरा कमरा ऊपर का था तो मैं पिछले जीने से उतरा जिससे कि मुझे घर का भी कोई सदस्य न देख ले। घर से बाहर एक रिक्शा किया और उसमें शान से बैठकर चल दिया। "

बात 1959 की है। जब मैं चंदोसी के एस. एम. कॉलिज का विद्यार्थी था और इंटरमीडिएट की परीक्षा पास करके बी. कॉम. का नया-नया छात्र बना था। एस. एम. कॉलिज जिसका पूरा नाम श्यामसुंदर मेमोरियल कॉलिज था, पी.जी कॉलिज था, जिसे वहाँ की रानी रामकली ने बहुत जल्दी विधवा होने पर अपने पति श्यामसुंदर जी की स्मृति में सन् 1909 में बनवाया था। इस कॉलिज में ग्यारहवीं कक्षा से लेकर सोलहवीं कक्षा तक पढ़ाई होती थी। मैंने भी 1959 में हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करके इस कॉलिज में एडमिशन ले लिया था। उस समय अधिकतर कॉलिजों का यही ढांचा था। बहुत दिनों बाद इन कॉलिजों की बारहवीं कक्षा तक के हिस्से को अलग करके इंटर कॉलिज की संज्ञा दी गई। यह बहुत पुराना और उन दिनों उत्तर प्रदेश का बहुत प्रख्यात कॉलिज था। इसकी ख्याति का एक कारण तो इस कॉलिज का ''हैली हॉस्टल'' था जो उन दिनों यू.पी. का सबसे सुंदर और सुविधाजनक होस्टल माना जाता था। इस होस्टल में रहने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी इस कॉलिज में एडमिशन लेने आते थे। दूसरा कारण यह था कि इस कॉलिज में लगभग सभी विषयों में स्नातकोत्तर कक्षाएं थीं और यहाँ के जो प्रोफेसर थे वे भी दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त थे। आप को बता दूं कि डॉ. नगेंद्र, जो बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे, इसी कॉलिज के छात्र थे। यही नहीं हिंदी गजल के प्रवर्तकों में जिनका नाम है, ऐसे इस युग में बड़े गजलकार दुष्यंत भी बिजनौर से इसी कॉलिज में पढ़ने आये थे। उस समय वे दुष्यंत कुमार परदेसी के नाम से गीत लिखते थे।

इसी कॉलिज का वार्षिकोत्सव था उसमें अनेक कार्यक्रम होने थे। उसमें एक 'फैंसी-ड्रेस' का कार्यक्रम भी था, मुझे यह कार्यक्रम बहुत अच्छा लगा। मुझे न जाने क्यों यह लगता रहा कि इस कार्यक्रम में मुझे भी भाग लेना चाहिए था। किंतु मैं 17 साल का बहुत शर्मीला और संकोची लड़का था इसलिए भाग नहीं ले सका... मन मसोसकर रह गया। मैं जिस मोहल्ले में रहता था उसका नाम घट्लेश्वर गेट था, जिसे सभी लोग घटिया गेट कहते थे, उससे सटा हुआ होली मोहल्ला था। इसी मोहल्ले की एक एसोसियेशन थी जो होली मोहल्ले के उस प्रांगण में, जिसमें होली जलती थी, शाम को एक दिन मुशायरा आयोजित करती थी और

सम्पर्क: 2एफ-51, नेहरू नगर, गाजियाबाद-201001, उ.प्र., मो: 9818379422, ई-मेल: kbachain2012@gmail.com

दूसरे दिन कवि सम्मेलन। जिस रात मुशायरा होता था उसी दिन शाम को इसी प्रांगण में एक 'फैंसीड्रेस' कार्यक्रम का आयोजन भी होता था। जो आगे होना भी था। मैं बड़े पसो-पेश में था कि मैं इस फैंसीड्रेस कार्यक्रम में भाग लूँ कि न लूँ। मगर मन नहीं माना और लाख मना करने पर भी मैंने फैंसीड्रेस कार्यक्रम में भाग लेने के लिए अपना नाम भिजवा दिया। अब मुझे यह सोचना था कि मैं इस फैंसीड्रेस कार्यक्रम में कौन सा रूप धारण करूँ। एक बार सोचा किसी भिखारी का रूप बनाऊँ... आदि...आदि। मगर मेरा संकल्प यह था कि कुछ भी बनूँ, किंतु मैं पहचान में बिल्कुल भी न आऊँ..., बहुत सोचा, बहुत सोचा और आखिर में यह फैसला किया कि मैं शायर बनकर जाऊँ, क्योंकि फैंसीड्रेस के बाद इसी जगह मुशायरा भी था...

मेरी क्लास में एक मुस्लिम लड़का था और वह मेरा दोस्त भी था। वह अक्सर कॉलिज में अचकन यानि कि शेरवानी और चुस्त पाजामा पहनकर आता था। मैं उसके घर गया और कहा—'भैया, क्या तुम मुझे एक दिन को अपनी शेरवानी और पाजामा दे सकते हो' वह बोला-'हाँ, हाँ, ले जाओ'... फिर आगे बोला--'क्या करना है?' मैंने कहा—'बस यू हीं'...

असल में मैं उसे यह बताना ही नहीं चाहता था कि मैं फैंसीड्रेस कार्यक्रम में भाग ले रहा हूँ। उसने मुझे शेरवानी दे दी। काले रंग की थी वह। पाजामा भी दे दिया। मुझे उसके घर की खूंटी पर एक टोपी भी दिखाई दी जो इस शेरवानी के साथ पहनी जाती थी। मैंने वह टोपी भी मांग ली। उसने वह भी दे दी। मैं शेरवानी, पाजामा और टोपी लेकर घर चला आया। अब मुझे हर तरह से यही कोशिश करनी थी कि मुझे कोई पहचान न ले। क्योंकि फैंसीड्रेस कार्यक्रम में तो उसे ही पुरस्कार मिलता था जो पहचान में न आये। मैंने घर पर भी नहीं बताया कि मैं इस कार्यक्रम में भाग ले रहा हूँ... बहुत दिनों पहले कभी मैं दशहरा का मेला देखने गया था तो वहाँ से मैंने दाढ़ी और मूंछ खरीद ली थी। वह भी मेरे पास थी। अपना चेहरा छुपाने के लिए मेरे पास इससे अच्छा कोई जुगाड़ नहीं था। अब मेरे पास शेरवानी, पाजामा, टोपी और दाढ़ी-मूंछें सारी चीजें मौजूद थीं...

शाम को 5 बजे से यह फैंसीड्रेस कार्यक्रम का आयोजन था। मैं साढ़े चार बजे घर से निकला। अचकन, पाजामा और टोपी पहनकर। चेहरे पर पूरी तरह दाढ़ी मूंछें लगाकर। एक हाथ में अटैची लेकर और दूसरे हाथ में एक छड़ीनुमा बेंत लेकर जिसे बूढ़े लोग स्वयं को संभालने के लिए रखते हैं। मेरा कमरा ऊपर का था तो मैं पिछले जीने से उतरा जिससे कि मुझे घर का भी कोई सदस्य न देख ले। घर से बाहर एक रिक्शा किया और उसमें शान से बैठकर चल दिया। मैं उन वाक्यों को भी याद करने लगा और बार-बार दोहराने लगा जो उर्दू के थे और जिन्हें मुझे किसी के कुछ पूछने पर बोलना था। क्योंकि मेरे कुछ दोस्त मुस्लिम भी थे और उनके घर भी आना-जाना होता था इसलिए उर्दू बोलना उन दिनों मेरे लिए बहुत मुश्किल नहीं था। मैं अच्छे उच्चारण के साथ उर्दू बोल लेता था। मगर उस दिन तो अपनी पूरी क्षमता और योग्यता के साथ उर्दू बोलनी थी। अत: बार-बार दोहराना रहा कुछ वाक्यों को...

रिक्शा जैसे ही बाजार में आया और कार्यक्रम स्थल से थोड़ी दूर पर ही था, तब ही मेरी दृष्टि एक पनवाड़ी की दुकान पर पड़ी। मैंने रिक्शा रुकवाया, एक बड़ा सा पान मुंह में भरा, एक सिगरेट भी ली और पनवाड़ी से माचिस लेकर सुलगाई और सिगरेट के कश खींचते हुए मैं रिक्शा में वहीं पहुँच गया जहां फैंसीड्रेस का कार्यक्रम शुरु हो चुका था। कोई पोस्टमैन बनकर आया था, कोई थानेदार तो कोई भिखारी...

मैं वहीं रिक्शा से उतरा, रिक्शे वाले को पैसे दिये। एक हाथ में अटैची और छड़ी लिए तथा दूसरे हाथ की बीच की अंगुली तथा उसके पास की अंगुली के बीच में सिगरेट दबाये, धुआं उड़ाते हुए और पान चबाते हुए मैं ठीक उन साहब की कुर्सी के पास जाकर खड़ा हो गया जो इस कार्यक्रम के ऑर्गेनाइजर थे। उन्होंने मेरे इस्तकबाल में, मुझे इज्जत देते हुए मेरे हाथ को थामकर अपने पास की खाली कुर्सी पर बिठा लिया। मैं बैठ गया और उनसे बोला—'जनाब, गुस्ताफी माफ हो, क्या आज जो मुशायरा होना है वह यहीं होना है?'... वे बोले—'हाँ, यहीं होना है, रात को आठ बजे से' ...मैंने कहा—'शुक्रिया जनाब'... वे सज्जन फैंसीड्रेस कार्यक्रम भी देखते जा रहे थे और मुझसे बात भी कर रहे थे। वे थे तथा उनके पास दो और व्यक्ति बैठे थे। ये सभी इस आयोजन के निर्णायकों में भी थे। उन्होंने बात को आगे बढ़ाते हुए पूछने के अंदाज में कहा—'तो आप आज के मुशायरे में आये है'? ...मैंने कहा—'जी जनाब, मुशायरे में ही शिरकत करने आया हूँ। ...उन्होंने फिर पूछा—'आपका नाम?' ...मैंने उत्तर दिया—'जनाब, मुझे कासिम अमरोहवी कहते हैं। सीधे अमरोहे से ही आ रहा हूँ... गजलें और नज्म कहता हूँ।'

वे बोले बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर। अभी कुछ देर में मैं आपको वहाँ पहुंचाता हूँ जहां आप शायरों को ठहराने का इंतजाम किया गया है। अभी हमारा यह फैंसीड्रेस का कार्यक्रम चल रहा है और कुछ ही देर में समाप्त होने वाला है। ...मैंने कहा—'अच्छा,

अच्छा, यह फैंसीड्रेस का प्रोग्राम चल रहा है। बहुत खूबसूरत है'... और ऐसा कहते हुए मैं भी इस प्रोग्राम को देखने का एक्टिंग करने लगा। बारह-चौदह लोगों ने इस कार्यक्रम में हिस्सा लिया था और भरसक कोशिश की थी कि वे पहचान में न आ सकें। निर्णय हुआ और उनमें से उसे प्रथम पुरस्कार घोषित किया गया जो डाकिया बना था। उसे सचमुच बहुत ही कम लोग पहचान पा रहे थे। वे सज्जन जो मेरे पास बैठे थे उन्होंने माइक पर जाकर तीन नामों की घोषणा की जो प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान पर आये थे। उन्होंने, जब मैं उनके पास बैठा था, तब ही मुझसे कहा था कि प्रोग्राम के आखिर में मैं चाहूंगा कि आप भी कुछ बोलें। मैंने कह दिया था—जी जनाब, यह तो मेरी खुशनसीबी होगी, हम जरूर बोलेंगे'... यही कारण था कि उन्होंने पुरस्कारों की घोषणा करने के बाद मुझे बुलाते हुए श्रोताओं को संबोधित करते हुए यह कहा—'भाई लोगों, यह हमारा सौभाग्य है कि आज इस कार्यक्रम को उन्होंने भी देखा जो आज शाम के मुशायरे में भाग लेने आये है। मैं आदरणीय कासिम अमरोहवी साहब से विनती करता हूँ कि वे इस आयोजन पर प्रकाश डालते हुए कुछ शब्द कहें।

मैं कुर्सी से उठकर बेंत हाथ में लेकर माइक के पास गया और बोला—'अजीज दोस्तों, मैं आज बहुत खुश हूँ कि मैं इस खूबसूरत प्रोग्राम में शामिल हो सका और अलग-अलग किरदारों में अलग-अलग हुनरमंदों का हुनर देख सका। मैं इंतजामात करने वालों का शुक्रगुजार हूँ कि उन्होंने मुझे एक खूबसूरत मंजर पर अपनी राय देने का मौका दिया। मुझे ये सारे रूप बहुत पसंद आये। लेकिन एक भारी शिकायत है उस जूरी से जिसने पहले, दूसरे और तीसरे नंबर पर आने वाले लोगों का फैसला किया है। एक शख्स और है जिसने इस फैंसीड्रेस में हिस्सा लिया और जूरी ने उसे नजरअंदाज कर दिया। अगर गौर से देखा होता तो यह वो शख्स था जिसे नंबर एक पर आना चाहिए था'...

और ऐसा कहते हुए मैंने अपनी दाढ़ी-मूछें हटा दीं। मैं जो बिल्कुल भी पहचान में नहीं आया था उसे सभी ने पहचान लिया। पहचाना इसलिए गया क्योंकि मैं इस ही मोहल्ले में रहता था। और अपनी छोटी-मोटी कविता करने के कारण भी थोड़ा बहुत जाना जाता था। सब कहने लगे अरे ये तो अपना कुमर है। जंगबहादुर का साला। अरे पिछली गली में ही तो रहता है। ...भई कमाल हो गया। यह तो बिल्कुल भी पहचान में नहीं आया।'...

असल में मैंने उस दिन वे सारे तेवर अपनाए जो मेरी छवि और स्वभाव से बिल्कुल अलग और विरुद्ध थे। मैं पूरे मोहल्ले में बहुत शरीफ और संकोची लड़कों में माना जाता था। कोई सोच भी नहीं सकता था कि मैं पान चबाता हूँ, सिगरेट पीता हूँ, इतना बोल्ड हूँ कि एकदम निडर होकर वहाँ बैठा रहूँगा और इतनी साफ उर्दू बोलूँगा कि कोई अनुमान ही नहीं लगा सके कि मैं वो हूँ जिसे पूरा मोहल्ला रोज ही बोलते हुए सुनता है और देखता भी है। सभी ने आकर मेरी पीठ थपथपाई, मेरे बराबर में जो सज्जन बैठे थे। उनके घर के तो मैं बहुत पास रहता था। गुप्ता जी थे। वे तो आश्चर्यचकित होकर बोले—'कुमार, तुमने तो आज कमाल ही कर दिया। मेरी पहचान में भी नहीं आये...

तुरंत निर्णय बदल गया, मैं प्रथम स्थान पर घोषित हुआ और सब मेरे बाद... ***

लेह से आगे

डॉ. ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश'

"जिस सड़क पर हम जा रहे हैं वह सीधी कारगिल चली जाती है। कारगिल भी मैं जाना चाहता हूँ। देखना चाहता हूँ उस भूमि को जिसके पत्थर-पत्थर पर भारतीय सेना के शौर्य की अमर गाथा अंकित है। वहाँ कितने जांबाजों ने अपने प्राणों की आहुति देकर महत्वपूर्ण दुर्गम चोटियों को शत्रु के नाजायज कब्जे से मुक्त कराया था, लेकिन कारगिल अभी दूर है, लगभग 111 किलोमीटर की दूरी होगी।"

पर्यटन की प्रवृत्ति के बावजूद कई बार मुझे यूं ही भी जाना पड़ा यानि उस समय जब मेरी जाने की कोई योजना नहीं होती। लेह जाने के समय ऐसा ही हुआ। मेरे एक मित्र की बदली लेह की हो गई थी। वे सैन्य-अधिकारी थे। मेरी प्रकृति जानते थे। इसलिए उन्होंने खुद ही पेशकश की थी। मेरी हार्दिक इच्छा सड़क-यात्रा की थी। वह रास्ता बहुत लंबा है किंतु उतना ही आकर्षक भी कम से कम मेरे लिए तो है ही। मुश्किल यह थी कि यह सड़क छः-सात महीने तो बंद ही रहती है। सर्दियों में बंद हो जाती है। जब कर्नल साहब ने निकट भविष्य में वहाँ से आ जाने की सूचना दी तो न चाहकर भी मुझे हवाई जहाज से जाना पड़ा। मई-जून से पहले सड़कें नहीं खुलतीं और अभी मार्च चल रहा था। हवाई यात्रा से लेह ज्यादा दूर नहीं; चंडीगढ़ से तो घंटा भी नहीं लगता।

लेह का हवाई-अड्डा छोटा सा है। उस तरह से ताम-झाम और गहमा-गहमी भी नहीं। एकदम सादा; बस-न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति वाला।

मुझे पता था कि सी.ओ. बहुत व्यस्त रहता है और वे खुद सी. ओ. थे। अतः मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे स्वयं न आकर अपने किसी मातहत को भेज दें परंतु जब मैं और मेरा साथी चौधरी हवाई-अड्डे से बाहर निकले तो देखा कि जीप लेकर वे स्वयं हैं। उनके साथ एक कैप्टन भी थे। मैं अभिभूत हो गया। मेरी उनकी भाषा नहीं मिलती, धर्म नहीं मिलता, प्रदेश नहीं मिलता, नौकरी नहीं मिलती परंतु इश्क की तरह मित्रता भी ये सब कुछ नहीं देखती; वह तो बस होती है या नहीं होती। एक छोटी-सी शुरुआत होती है और रफ्ता-रफ्ता सघन होती जाती है।

उन्होंने थर्मस खोले और इतनी दूर से बनाकर लायी गई गर्म-गर्म चाय हमें परोसी, साथ ही कुछ बिस्कुट आदि भी। उतनी ठंड में चाय ऐसी लग रही थी जैसे अमृत के घूंट पी रहे हो। कर्नल मित्र के प्रति मेरे मन में ऐसे भाव आ रहे थे कि इनके लिए मैं कभी भी कुछ नहीं करूँगा।

सिपाहियों ने सामान पीछे लादा और जीप स्टार्ट कर दी। कर्नल साहब खुश-मिजाज व्यक्ति हैं। ज्यादातर फौजी इसी स्वभाव के होते हैं वर्ना तो वे, जिन परिस्थितियों में रहते हैं, जी नहीं सकते। वे बात-बात पर कहकहे लगा रहे थे। जीप खुद ड्राइव कर रहे

सम्पर्क: सी4बी/110 (पाकेट-13), जनकपुरी, नई दिल्ली-110058,
फोन: 011-25548799

थे। कुछ पूछते रहे, कुछ बताते रहे। हमें लेह से लगभग 40 कि.मी दूर जाना था जहाँ उनका कैम्प था। लेह नगर गुजरने के बाद ही पहाड़ दिखने लगे, सामने नहीं, चारों ओर। सामने तो समतल मैदान था जिस पर सीधी सड़क थी। पहाड़ों पर कोई हरियाली नहीं थी जिससे मेरे मन को क्लेश पहुँचा। पहाड़ हों और उन पर हरियाली न हो? पहाड़ों पर पीले-भूरे रंग के छोटे-बड़े पत्थर दिख रहे थे। हाँ, ठंड काफी ज्यादा थी। पर्यटन का मौसम अभी आया नहीं था। मार्च का ही महीना था।

एक स्थान पर जीप एकदम रोक दी गई। इंजन बंद कर दिया गया। लेकिन गाड़ी अपने-आप धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। यह स्थल हर पर्यटक को दिखाया जाता है जहाँ गाड़ी स्वयमेव चलती जाती है। होगा जमीन के नीचे या आस-पास आकर्षण-विकर्षण जैसा कुछ, पर है कुदरत का करिश्मा।

बातों-बातों में हम निमू पहुँच गए। यहाँ कैम्प था। छोटी-सी यूनिट किंतु सब कुछ व्यवस्थित, चाक-चौबंद। बड़े भवन नहीं थे। छोटी-छोटी कुटियाएँ सी थीं। लगभग चार-पाँच फुट की ईंटों की दीवारें फिर ऊपर तिरपाल, लकड़ी-स्लेट आदि के स्ट्रक्चर। भीतरी हिस्से को बहुत गर्म रखा गया था। ऐसा न हो तो रहना मुश्किल हो जाए। बड़े-बड़े स्टोव थे जो तेल से चलते थे और गर्मी देते थे। जहाँ कार्यालय या बड़ा सामान था, वहाँ ऊँचे बड़े हाल भी थे परंतु वे भी मिले-जुले मैटेरियल से बने हुए थे। एक मैस था जहाँ अफसर खाना खाते थे। एक मंदिर भी था।

हमें हिदायतें दी गईं। कहा गया कि हफ्ता भर रेस्ट करना होगा ताािक शरीर स्थानीय जलवायु के अनुकूल हो जाए। अंग्रेजी में इसे अक्लामेटाइजेशन (Acclimatization) कहा जाता है। मैंने बताया कि हम तो आए ही सात-आठ दिन के लिए हैं और हमारी वापसी की टिकटें बुक हैं तो वे थोड़ा असमंजस में पड़ गए। यहाँ फेफड़ों में पानी भर जाने के रोग की संभावना रहती है। वातावरण में ऑक्सीजन कम होती है इसलिए सांस फूल जाती है। मैं बहुत तेज चलता हूँ। इसके लिए भी मना किया गया। तेज चलना, उछलना-कूदना, चढ़ाई चढ़ना जैसी गतिविधियाँ निषिद्ध कर दी गईं। सूत्र बताया गया-'डोंट बी आ गामा, इन द लैंड ऑफ लामा, यानि यहाँ पहलवानी दिखाने की जरूरत नहीं वर्ना लेने के देने पड़ जाएंगे।'

मेरे मित्र चाको ने देखा कि ठंड बहुत है। सो स्टोर से दो मोटी भारी जैकेट्स मंगवा कर कहा—इन्हें पहनो, दिल्ली वाली काम नहीं देंगी। जैसी सैनिकों ने खुद पहन रखी थी, वैसी दो ऊनी टोपियाँ भी दी गईं। फिर हँसते हुए कहा—उधार पर हैं, जाते हुए वापस करनी पड़ेंगी।

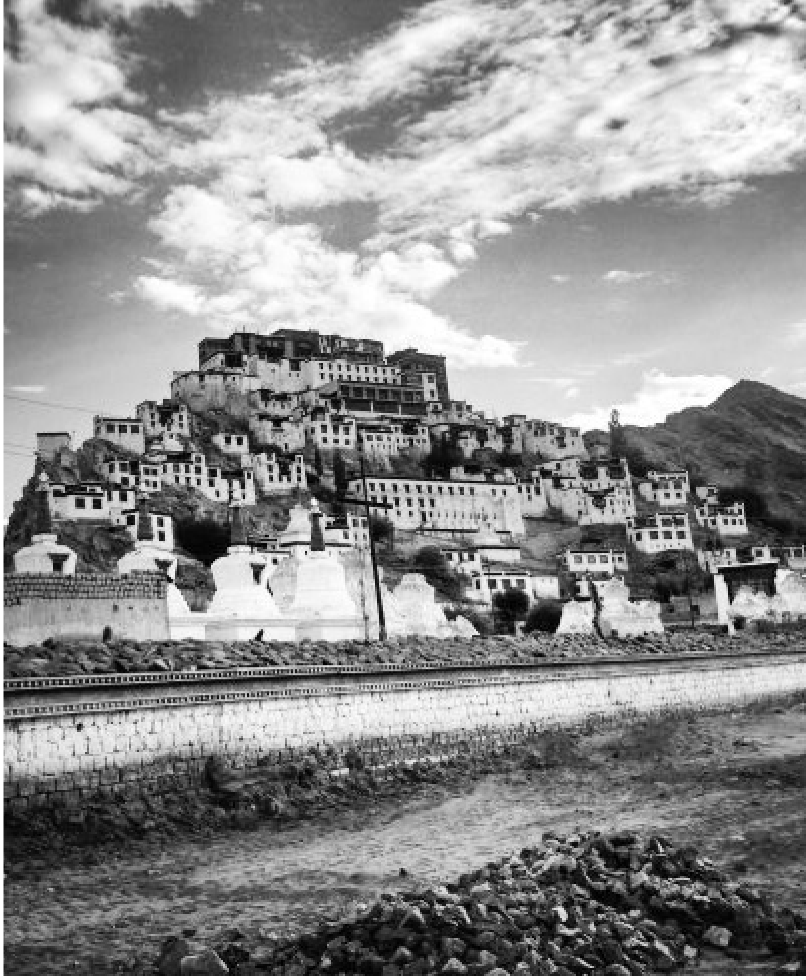

पास ही मैस था, हमारा खाना, चाय-नाश्ता हमारे टैंट में ही आता था। मैंने एक-दो बार वहाँ जाकर चाय पी तो हवलदार ने कहा—साहब का आर्डर है आपके लिए सब कुछ वहीं पहुँचना है। हमारे भले के लिए भी, आप वहीं रहें। कुछ भी माँगता तो टेलीफोन करने का है।

टैंट में एक टेलीफोन दिया हुआ था। बिस्तर आरामदेह और गर्म थी। मोटे-मोटे गद्दे थे। रजाई इतनी भारी कि उठाकर रखनी भी कठिन।

चाको साहब बीच-बीच में खुद आकर पूछ जाते... ठीक चल रहा है... कम्फर्टेबल? एवरीथिंग ऑल राइट...?

जब नियमों की कैद से मुक्त हुए तो एक गाड़ी, एक अधिकारी, कुछ खाने-पीने का सामान आदि के साथ हमें घूमने के लिए छोड़ दिया गया।

यह सड़क कारगिल होती हुई श्रीनगर तक जाती है। श्रीनगर यहाँ से बहुत दूर है, लगभग 450 किलोमीटर। 250 किलोमीटर कारगिल है और श्रीनगर 200 किलोमीटर और आगे होगा।

...हम ऑलची गोम्पा जा रहे हैं ससपाल, नुरला होते हुए।

नुरला बड़ा कस्बा है। अधिकतर स्थानों पर सिंधु नदी सड़क के साथ-साथ बहती है। सिंधु की भी अपनी शान है। काफी बड़ी नदी है।

रास्ते में बाजगो में रुके। एक पुराना गाँव सा है। किसी समय यह लद्दाख की राजधानी रही थी। यहाँ किला, महल, मठ, मंदिर सब कुछ था पर अब केवल खंडहर खड़े हैं। कभी ठाठ-बाट होंगे, आज हवा भी साँय-साँय है। समय से भी इंसान बहुत कुछ सीख सकता है। यहाँ तथाकथित नगर सड़क से ऊपर हैं। कई फिल्मों की शूटिंग भी यहाँ हुई है। सैनिक ने फिल्म का नाम बताया तो था पर मुझे अब याद नहीं रहा। वह कह रहा था—'सर, यहाँ खड़ा था शाहरुख खान इस पत्थर पर...।'

रास्ते में जगह-जगह पर बौद्ध बुर्जियाँ बनी हुई हैं जहाँ पीले, नीले, सफेद रंग के कपड़ों की लीरें (धज्जियाँ) बंधी हैं। इन्हें 'चोरटन' कहते हैं।

बीच-बीच में बड़े-बड़े समतल मैदान आ जाते हैं जिनके चारों ओर सूने पहाड़ हैं जिन पर कई रंग के पत्थर हैं—गहरे-हरे, भूरे, मटमैले। एक ही पत्थर में दो-तीन रंग मिल सकते हैं। कुछ पहाड़ की चोटियों पर बर्फ है।

आलची गाँव आ गया जहाँ एक गोम्पा है। गोम्पा गाँव के नीचे है। कई मंजिलों में होने के कारण ऊपर तक आ गया है। गाँव की दुकानें अभी बंद हैं यद्यपि 10:30 बज चुके हैं। आराम-पसंद लोग हैं। धीरे-धीरे उठेंगे। ठंड भी है। आलची की ऊँचाई 10,000 फुट से अधिक है। कई होटल और गेस्ट-हाऊस हैं जिससे पता चलता है कि यहाँ टूरिस्ट आते होंगे। वस्तुत: आलची गोम्पा बहुत पुराना है। इसका निर्माण-काल 1020-1030 के बीच माना जाता है। इसमें पुरानी लद्दाखी कल्चर संरक्षित है। मंदिर एक परकोटे से घिरा हुआ है। इसकी देखरेख आर्किऑलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के जिम्मे है। इसकी दीवारों पर बुद्ध का पूरा जीवन दिया हुआ है। दीवारों पर पेंटिंग्स बनी हुई हैं जिनके तांत्रिक अर्थ हैं। भीतर बुद्ध की बहुत बड़ी मूर्ति है जिसके मुँह पर कपड़ा ढका हुआ है। इसे बुद्ध का बैरोचन रूप माना गया है जिसके चार मुख कहे जाते हैं। यहाँ चौबीस घंटे दीपक जलता है। भारतीय पौराणिकता में बैरोचन राजा बलि का एक नाम है। बलि प्रह्लाद का पौत्र था। और दैत्य जाति का राजा माना गया है। वामन ने पैर के दबाव से बलि को पाताल भेज दिया था।

आलची गोम्पा में खुमानी के कुछ वृक्ष हैं। देखकर अच्छा लगा क्योंकि यहाँ सामान्यत: पेड़-पौधे नहीं होते। जो पानी पीते हैं, वह भी बर्फ पिघला कर बनाते हैं।

गोम्पा के नीचे स्वाभिमानी सिंधु प्रवाहमान है, कुछ अपनी धुन में गीत गाता हुआ।

टोली आगे बढ़ती है। अब चलेंगे लिकीर (Likeer) मॉनेस्ट्री। हम कितने ही आधा पानी आधी बर्फ वाले नाले-नालियों के करीब से गुजरते हैं। बर्फ की विस्तृत सफेद चादर चारों ओर मैदानों में फैली है। बर्फ समाधिस्थ है, मैदान चुप हैं। ...लीजिए, गाड़ी रुक गई। मॉनेस्ट्री आ गई है।

उतरते ही अन्य पशुओं के बीच विराजमान यॉक के दर्शन होते हैं। क्या कहें, बड़ी भैंस सरीखा या बड़े वृषभ जैसा; एकदम काला धुत्त। शरीर पर घने बाल हैं। दो सींग हैं। शरीफ और शांत लगता है। इससे पहले मैंने जीवित यॉक नहीं देखा था। कई वर्षों बाद जब किन्नौर गया तो वहाँ इनके पुन: दर्शन हुए। कुछ लोग, बच्चे, स्त्रियाँ मॉनेस्ट्री-गेट के पास खड़े मिलते हैं। वे सब शांत हैं। कभी हल्का-सा मुस्कुरा देते हैं। बूढ़े-बूढ़ियों के हाथ में मालाएं घूमती रहती हैं। साथ में कुछ मंत्र पढ़ते जाते हैं। चेहरे पर झुर्रियाँ हैं और आँखें मिचमिची सी। सभी ने लगभग पैरों को छूते भारी ऊनी ओवरकोट जैसे वस्त्र पहने हुए हैं। इसके ऊपर भी भेड़ की खाल जैसी कोई वास्कट सी है। सिर पर टोपी है जिसमें कानों को ढकने के लिए दोनों ओर छोटी पट्टी बनाई गई है। पैरों में भारी ऊनी जूते हैं या दूसरे जूते हैं तो मोटे मोजें हैं। बच्चे चंचल है, हँसते हैं, खेलते हैं। वे भी उसी तरह ऊनी वस्त्रों से लदे हुए हैं। कोट पर ऊनी रस्सी बाँध रखी है। मुँह चाहे अनधुले होंगे पर गाल एकदम लाल-लाल।

लिकीर मॉनेस्ट्री बहुत बड़ी है। यहाँ लामाओं को प्रशिक्षित करने का एक स्कूल भी चलता है। छोटी आयु के बच्चे भर्ती कर लिए जाते हैं और इन्हें विधिवत् शिक्षा दी जाती है। इन्हें बौद्ध-दर्शन पढ़ाया जाता है। साधना के तौर-तरीके भी सिखाए जाते हैं। अंत में परीक्षा होती है और डिग्री मिलती है। बताया गया कि कहीं कर्नाटक में तिब्बती विश्वविद्यालय है जो इन्हें डिग्री प्रदान करता है। पहले यह विश्वविद्यालय तिब्बत में था। फिलहाल इस स्कूल में 40 बच्चे और 4 अध्यापक हैं। यह छोटा स्कूल है। पाँच-छ: साल पढ़ाई होती है। आगे की पढ़ाई के लिए लेह जाना पड़ता है। लामाओं में स्त्रियाँ भी होती हैं जिन्हें 'चोमो' कहते हैं। लामा बनने में लगभग बीस वर्ष लग जाते हैं।

मुख्य मंदिर में बुद्ध की तीन मूर्तियाँ हैं। एक बुद्ध जो अतीत काल में हुआ था। उसे काश्यपा कहते हैं। वर्तमान काल का बुद्ध शाक्यमुनि है। जो भविष्य में होगा उसे मैत्रेयी बुद्ध का नाम दिया गया है। मूर्तियों के मुँह पर कपड़ा है। जब फरवरी में 'लिकिर फेस्टिवल' होता है तब मूर्तियों पर से अवगुंठन हटाया जाता है।

यहाँ एक मूर्ति महाकाल की भी है जिसके मुँह पर रक्त दिखाया गया है।

बाहर प्रांगण में बुद्ध की एक विशाल मूर्ति बनी हुई है जो बहुत ऊँची, चमकीली और आकर्षक है। संभवत: धातु की है। इसका उद्घाटन दलाई लामा द्वारा 1998 में हुआ था। यह बुद्ध की बैठी मुद्रा में है। इसे एक मँची (Pedestal) पर स्थापित किया गया है। मूर्ति के नीचे चबूतरे पर नीले, हरे, सफेद, नारंगी रंग के फूल, पत्ते, पक्षी आदि बने हैं। ज्यामिति डिजाइन भी हैं जिनके संभवत: कुछ विशिष्ट अर्थ होते होंगे। कुछ राक्षसी या दानवी आकृतियाँ भी हैं।

बाहर बरामदे में बहुत बड़े-बड़े कई भित्ति चित्र हैं जो तिब्बती कला के भव्य नमूने हैं। इनके अर्थ विशेषज्ञ ही लगा सकते हैं। तिब्बती बौद्ध चित्रों के रंग लगभग तय हैं—पीला, नारंगी, नीला, कहीं-कहीं हरा भी। पीले और नारंगी रंग का प्रयोग सर्वाधिक है।

इन मंदिरों में फूलों के स्थान पर वस्त्र चढ़ाए जाते हैं। प्राय: ये सिल्क के दुपट्टे होते हैं। लामा द्वारा प्रसाद-रूप में दिया गया वस्त्र बहुत मूल्यवान माना जाता है। लोग उसका आदर करते हैं और संभाल कर रख लेते हैं।

जिस सड़क पर हम जा रहे हैं वह सीधी कारगिल चली जाती है। कारगिल भी मैं जाना चाहता हूँ। देखना चाहता हूँ उस भूमि को जिसके पत्थर-पत्थर पर भारतीय सेना के शौर्य की अमर गाथा अंकित है। वहाँ कितने जांबाजों ने अपने प्राणों की आहुति देकर महत्वपूर्ण दुर्गम चोटियों को शत्रु के नाजायज कब्जे से मुक्त कराया था, लेकिन कारगिल अभी दूर है, लगभग 111 किलोमीटर की दूरी होगी। इस मार्ग पर जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते जाएंगे, बौद्धों की संख्या कम होती जाएगी और मुसलमानों की संख्या क्रमश: बढ़ती जाएगी। कारगिल में बहुत से शिया मुसलमान हैं। उससे आगे बाल्टिस्तान और गिलगित के इलाके, जिनपर पाकिस्तान ने जबरन कब्जा जमा रखा है, भी मुस्लिम बहुल हैं। एक मत से द्रास में बसे हुए 'दरद' लोग आर्य जाति के वंशज हैं जो सदियों पूर्व मध्य-एशिया से यहाँ आ बसे थे।

यहाँ के पहाड़ों पर मिट्टी और बर्फ साथ-साथ दिख सकते हैं। चलती गाड़ी में से एक ओर संकेत करते हुए ड्राइवर हमें बताता है कि यह 'मून-लैंड' है। इसकी सतह वैसी ही है जैसी चाँद की। यहाँ की मिट्टी टेस्ट की गई तो वैसी ही निकली जैसी नील आर्मस्ट्रांग के बाद वाले अंतरिक्ष-यात्री लाए थे। हमने कहा—गाड़ी रोको, फोटो लेंगे। नजदीक जाकर देखा, पूरा पीली मिट्टी का पहाड़ था जो कुछ-कुछ कंकरीला था। कुछ विद्वानों का मत है कि लेह के रेतीले इलाके गोबी मरुस्थल का प्रसार है जो तिब्बत के पठारों से होते हुए यहाँ तक आ पहुँचा है। संयोग देखिए, कि कहाँ की चीज कहाँ पहुँच जाती है, बेशक बीच में वर्षों का, सदियों का अंतराल रहता है। आखिर धरती तो एक है और ये ग्रह, सूरज, धरती, चाँद, मंगल भी तो एक दूसरे से संबंधों में बंधे घूम रहे हैं। पुराने लोग यह भी कहा करते थे कि सूर्य का एक भाग अलग हुआ वो ठंडा होने पर धरती बना। धरती के नीचे गर्मी आज भी है। पुरानी लोरियों में 'चंदा मामा दूर के' कहा जाता है। कैसे? दोनों सूर्य से जुड़े हैं। इस हिसाब से चंद्रमा धरती का भाई है। धरती हमारी माता है। मनुष्य आज भी मंगल, बुध, शुक्र के अनुसंधान में लगा हुआ है। वह सब कुछ जान लेना चाहता है लेकिन प्रकृति के भी आखिर कुछ रहस्य हैं जो अति गूढ़ हैं...। हाँ, गोबी और लेह के संदर्भ में बात करें तो एक अंतर यह है कि गोबी मरुस्थल में इतने ऊँचे पर्वत नहीं हैं जितने लेह में। प्रकृति ने यहाँ पर्वतों पर बर्फ का छिड़काव कर रखा है।

और आगे बढ़ते हैं तो दिखता है कि पहाड़ों की जल-धाराएँ जम कर हिम-धाराएँ बन गई हैं। चंचल प्राणवान् प्रपात जड़ होकर रह गए हैं। देखिए, मौसम क्या-क्या कहर ढाता है। अब कोई पर्वत ऐसा नहीं जो बिना बर्फ के हो... हिमाच्छादित चोटियाँ मनुष्य को चुनौती देती हैं कि आओ, और देखो कि हम किन परिस्थितियों में जीती हैं... कई बार तो लगता है कि बर्फ से दोस्ती कर लेनी चाहिए... कितनी साफ और बेदाग है। जमे हुए झरने मिलकर बर्फ की सोई हुई नदी में तब्दील हो गए हैं। कहीं पूरे का पूरा पर्वत बर्फ के बोझ तले दब गया है।

हम लामा-येरु जा रहे हैं। उससे कुछ ही आगे फोटुला है जो लेह-श्रीनगर का उच्चतम बिंदु है।

...सड़क के एक ओर कच्चे पहाड़ हैं, मिट्टी वाले और दूसरी ओर बर्फ के विशाल बुर्के में कैद पहाड़। आमने-सामने हैं दो रूप, एक दूसरे के विरोधी। हम यों भी सोच सकते हैं कि ये एक दूसरे के पूरक हैं। एक ओर की कमी दूसरी ओर पूरी हो चुकी है... धूप निकल आई है। सूर्य की किरणें बर्फ पर शीशे की तरह चमक रही हैं। नेत्र-रक्षा के लिए चश्मे लगाना अब अनिवार्य है।

गाड़ी एक कैंप पर रुकती है। सेना की पोस्ट है। एक कैप्टन या मेजर उठकर हमारे साथ आए लेफ्टिनेंट कर्नल का गर्मजोशी से स्वागत करता है। वे हमारा परिचय कराते हैं-ये, हमारे दो मेहमान है। दिल्ली से आए हैं। अमुक कॉलिज में पढ़ाते हैं। मेजबान अफसर मुस्करा कर हमारा भी स्वागत करता है। हाथ मिलाने में पता चलता है किसी फौजी से हाथ मिला रहे हैं।

बैठने के लिए साधारण-सी कुर्सियाँ हैं। गर्म बुखारी जलवाकर हमारे पास रख दी गई है जिससे राहत मिलती है। बहुत ज्यादा

ठंड है। वही कम ऊंचाई वाले स्ट्रक्चर। मैंने यहाँ कोई ईंटोंवाली या लैंटरवाली छत नहीं देखी। थोड़ी देर में देखता क्या हूँ कि गर्मा-गर्म चाय और पकौड़े हमारे समाने पेश कर दिए गए हैं। फौजी बहुत मेहमाननवाज होते हैं, लेकिन इतनी ऊँचाई पर ये सब कैसे हो पाता होगा? जहाँ पीने वाला पानी भी जम जाता है वहाँ भाप छोड़ती चाय, पकोड़े आदि... कितना सेवा-भाव है इन लोगों में! महसूस किया, कम से कम भूख और सर्दी से तो ये किसी को मरने नहीं देते होंगे।

वे बातें करने लग गए। कुछ सरकारी काम भी था जिसके लिए वे यहाँ आए थे। हमें ड्राइवर के साथ लामा-येरु भेज दिया गया।

लामा येरु लेह का सबसे पुराना और बहुत महत्वपूर्ण बौद्ध-विहार है, जहाँ भगवान बुद्ध के साथ-साथ लामाओं की मूर्तियाँ भी रखी गई हैं और उसी प्रकार उनकी भी पूजा की जाती है। बौद्ध-विश्वास के अनुसार यह स्थल पूरी सृष्टि का केंद्र-बिंदु है... बुद्ध की मूर्ति के सिर पर बहुत बड़ा मुकुट है जिसमें मूल्यवान पत्थर लगे हैं। चरणों में रेशमी दुपट्टे बिछे हैं। एक और काले पत्थर की मूर्ति है जिसके चारों ओर वस्त्र हैं। शायद यह महाकाल या काली का प्रतिनिधित्व करती है। नीचे की दीवार पर कुछ-कुछ डिजाइनों के साथ वृत्त बने हुए हैं। बरामदे की दीवारों पर बड़े-बड़े रंग-बिरंगे भित्ति-चित्र बने हैं जो प्रशिक्षित चित्रकारों की कारीगरी लगती है। इन सबमें कुछ कथा-प्रसंग होंगे। प्राचीन विशिष्ट कला सूचक इन चित्रों का संरक्षण बहुत आवश्यक है।

एक सूचना-पट पर लामा-येरु का पूरा इतिहास लिखा हुआ है। सैन्य अधिकारियों की बदौलत हमें वी.आई.पी. मान लिया गया। लामा द्वारा हमारा सम्मान किया गया। हमें श्वेत सिल्क के दुपट्टे पहनाए गए। कुछ मंत्र पढ़े गए। मैंने मन-ही-मन मेजबानों का धन्यवाद किया।

गाड़ी फोटूला के लिए चल पड़ी। दो-तीन किलोमीटर ही होगा।

लगने लगा जैसे हम हिम-प्रदेश में से गुजर रहे हो। दाएँ-बाएँ बर्फ। ड्राइवर तो खैर समझदार होगा ही लेकिन हम बर्फ में बनी दो लकीरों से अंदाजा लगा रहे थे कि सड़क यहाँ है। बर्फ का एक समुद्र सा फैला है जिसमें पर्वत गुम हो गए। नेत्र जैसे बर्फमय हो गए। उनमें सफेदी भर गई। धूप से पिघली बर्फ के पानी के छीटें उड़ रहे हैं। टायरों के नीचे कुचली जाती बर्फ से कच-कच की ध्वनि पैदा हो रही है। रास्ते के दोनों तरफ तकरीबन एक फुट ऊँची बर्फ की मेड़े पहियों को छू रही हैं। ऐसा लगता है नन्हें-नन्हें सिपाही सफेद वर्दी पहने रास्ते की रक्षा कर रहे हैं या दोनों ओर अमन के देवदूत शांति का पैगाम दे रहे हैं। जैसे फैले बादलों में कई आकृतियाँ बन जाती हैं, वैसे ही कल्पनाशील मन बर्फ में कई तस्वीरें देख रहा है। लगता है उस स्थान पर अंडे सेती एक फूली सी मुर्गी बैठी है, पीछे मैदान में एक भेड़ चर रही है... बर्फ की चादर में लिपटी सड़क कांप नहीं रही है, यह आश्चर्यजनक है। आखिर वह चरम अनुभूति का क्षण आ गया। गाड़ी रुकी। हम उतरे। हम फोटूला चोटी पर थे, जो लेह-श्रीनगर मार्ग का उच्चतम बिंदु है। यहाँ की ऊँचाई 13479 फीट है। मैंने चारों ओर दृष्टि डाली, बर्फ ही बर्फ। बर्फ ही बर्फ के सिवा और कुछ नहीं। कोई जीव, पक्षी, पौधा-पत्ता, प्राणी, कुछ नहीं। उस हिम-सागर में केवल बॉर्डर रोड्स वालों का सूचना-पत्थर था और प्रसार-भारती का एक बोर्ड। दूर पीछे पृष्ठभूमि में एक एंटेना डिस्क थी। दो-एक शैड्स भी थे जहाँ सरकारी कर्मचारी या सैनिक रहते होंगे। चारों ओर बर्फ का राज्य नहीं, साम्राज्य था। एक तत्त्व की ही प्रधानता, और उसे बर्फ कहो। कितनी श्वेत, कितनी निर्दोष, कितनी शीतल। धुनी हुई रुई जैसे उड़-उड़ कर बेतरतीब फैल गई हो या सब की सब बेकाबू हो गई हो। अनंत कपास, अनथक धुनिया, ढेरों ढेर रुई; इतनी कि संभाले न संभले। प्रकृति कभी न समाप्त होने वाली हिम-गाथा कह रही थी। यह पूरी यात्रा बर्फ का आख्यान थी, प्रकृति कविता का श्वेत पक्ष।

मैं पुलकित था; निर्निमेष हिम देख रहा था। समझ नहीं पा रहा था कि क्या करूँ? कभी मन करता था यहाँ लेट जाऊँ और बर्फ ओढ़ लूँ और जब मन करे लेटा रहूँ। दिल करता था कि जोर-जोर से उछलूँ... मेरी ऐसी मन:स्थिति देखकर कॉमर्स-शिक्षक मेरे साथी चौधरी ने कहा—'ओए शर्मे, तू पागल हो गया है!' पागल तो खैर नहीं हुआ था पर मुझ पर एक प्रकार का खुमार तारी था। मेरे नेत्र बर्फमय हो गए थे।

...ड्राइवर इशारा करता है कि वापस चलना है। ठीक है, जो आया है, वह जाएगा। बाहर ठंड में देर तक ठहरना भी तो मुनासिब नहीं। वापस लामा-येरु लौटे तो टीम के दूसरे सदस्य भी साथ मिल गए।

अभी कुछ दूर तक तो बर्फ साथ चलेगी ही। आगे ढलान शुरु होने वाली है।... कुछ देर बाद पीछे मुड़कर देखा तो न सड़क थी, न बर्फ थी, न पर्वत थे, बस भाप ही भाप थी जिसमें कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।... एक स्थान ऐसा भी था जहाँ सड़क के एक तरफ के पर्वत पर बर्फ लदी है जबकि दूसरी ओर नंगे पहाड़ हैं जिन पर चमकीली धूप है। धूप-छाया, ठंड-गर्मी, स्याह-सफेद, धुँधला और साफ-शफ्फाफ आमने-सामने। बर्फ फिर भी बीच-बीच में कहीं आ जाती है, मानो चुनी गई कपास

की झोली में से थोड़ी-थोड़ी कपास गिरती चली गई और कपास चुनने वाली को खबर न हुई हो...।

पहाड़ों के रंग बदलने लगे हैं... भूरे हरे, हल्के स्लेटी..., आसमान काफी नीला चमक रहा है... दो-चार सफेद बादल मस्ती में इधर-उधर घूम रहे हैं। सड़क पर तीखे मोड़ हैं जिसे अंग्रेजी में हेयर-पिन-बैंड (Hair pin bend) कहते हैं। बॉर्डर रोड्स के एक बोर्ड पर लिखा मिलता है, 'बी कॉशियस ऑन कर्व्स (Be cautious on curves)' तीखी खतरनाक उतराई है। ऊपर से, नीचे दूर तक बलखाती सड़क दिखती है, मानो कोई रेंगता बहुत लंबा सर्प बेजान होकर रह गया हो। कहते हैं यहाँ से नीचे उतरती 350 गाड़ियाँ तक एक साथ दिखाई देती हैं। गाँव की भाषा में कहें तो सड़क 'बल्द-मूतणा' सी दिख रही है। बैल चलते हुए जब लघु-शंका करते हुए आगे बढ़ता जाता है तो पीछे एक टेढ़ी-मेढ़ी गीली लकीर बन जाती है। वही 'बल्द-मूतणा' है। उपमा कुछ भदेस किंतु उपयुक्तता के पैमाने पर खरी है।

...खलसी केवल 18 किलोमीटर रह गया है। अब सड़क, जमीन, कंकड़, पत्थर, बिना भेद-भाव के चैन से सो रहे हैं। सूखी टहनियों वाले लंबे, पतले पेड़ शांत-भाव से सोए हैं। इनके चरणों में उगी छोटी-बड़ी झाड़ियाँ खिदमतगारों की तरह हाथ बाँधे खड़ी हैं। आधी बर्फ वाली एक बहती नाली हमारी गाड़ी के साथ-साथ चलने लगी है। जहाँ ऊपर कोई पत्थर छत की तरह अटका हुआ है। वहाँ पानी काला हो गया है या अंशत: जम गया है। वह देखिए, बिछुड़ी हुई सिंधु नदी, पुन: मिल गई है। सिंधु में जहाँ से पानी हट गया है, वहाँ लघु रेत-प्रदेश बन गया है।... सड़क पर शाम घिर गई है। दूर चोटियों पर बेफिक्र धूप पसरी है।... गाँव आने लगे हैं जहाँ लद्दाखी कपड़े लपेटे बड़े-बड़े 'पोल' खड़े हैं। नुरला ससपोल बाजगो होते हुए हम सब शिविर में लौट आए हैं।

फिर एक दिन हम गुरुद्वारा पत्थर-साहब देखने गए। यह ऐतिहासिक गुरुद्वारा लेह से 25 किलोमीटर दूर है। सौभाग्य था कि हम उस स्थान के दर्शन कर पाए। बर्फ से घिरे गुरुद्वारे की देख-रेख सेना के लोग करते हैं। उन्हीं के प्रबंध में यह चलता है। कहा जाता है कि नानकदेव जी दूसरी यात्रा के दौरान 1517 में यहाँ आए थे। पर्वत से एक विशालकाय पत्थर लुढ़कता हुआ नीचे आ रहा था। जान-माल का नुकसान न हो, यह सोचकर नानकजी बैठ गए और उस पत्थर को अपनी पीठ से रोक दिया। वह पत्थर, पत्थर क्या, पर्वत का लघु भाग, आज भी वहाँ सुरक्षित हैं जिस पर गुरुजी की पीठ के निशान बने हुए हैं। संत लोग

जन-हित और जन-रक्षा के लिए क्या कुछ नहीं करते? और फिर, सिक्ख गुरुओं की तो कुर्बानी की परंपरा रही है।

जैसे ही हमने दर्शन किए, हम रुमालें उतारने लगे। तभी एक युवक करीब आ कर बोला 'लंगर तैयार है... चा'दा परशादा शको।' मैं गद्‌गद् था। कृतार्थ मन कह रहा था—जीवन सफल हो गया।

फिर वही विदा-वेला, जो हर यात्रा के बाद आती है। भगवान ने विदाई भी क्या चीज बनाई है! न होती विदाई तो क्या होता? हाँ, एक और छोटा किस्सा। हम वापसी के लिए हवाई जहाज में बैठ गए और वह बहुत तेजी से रन-वे पर दौड़ रहा था कि अचानक एकदम ब्रेक लगी। हमारे सिर अगली सीटों से टकरा गए। प्लेन एक झटके से रुका। मैंने मित्र चौधरी से कहा-लगता है पायलट के पास लर्नर लाइसेंस है। चौधरी ने जवाब दिया-तुझे मजाक सूझ रहा है... अभी एक्सीडेंट हो जाता तो...? हम सब को नीचे उतारा गया। बाहर लौंज में ढाई-तीन घंटे हम इंतजार करते रहे। जहाँ तक मुझे याद है वहाँ चाय-कॉफी का भी कोई प्रबंध नहीं था। लघु-शंका के लिए कोई ढंग का बाथरूम तक नहीं। एक कनात के पीछे जमीन में खुदा एक गड्ढा था, उसी से काम चलाना पड़ता था लेकिन अंतत: हम सही-सलामत वापस दिल्ली आ गए।

***

चार्वाक

श्याम सखा श्याम

मैंने उससे कहा था कि तुमने पच्चीस साल तक विवाह इसलिए नहीं किया था कि तुम्हें ब्रह्मचर्य आश्रम निभाना था। चाचा बेचारे तरसते चले गए मगर तुम टस से मस न हुए। अब पच्चीस से पचास साल तक गृहस्थाश्रम हेतु तुम्हें दोबारा विवाह करना चाहिए।

पूरे पचपन साल कोई कैसे सुखी रह सकता है, यह जानना सीखना है तो आप सदानंद से मिलें। हम दोनों एक कॉलेज में पढ़े हैं। बी.ए. के बाद कानून पढ़कर मैं तो वकील बन गया तथा सदानंद संस्कृत से एम.ए. करके प्राध्यापक लग गया। एम.ए. करते रहते उसके संस्कार कुछ अधिक ही पौराणिक हो गए थे। बात-बात में संस्कृत के श्लोकों का उदाहरण दे डालना उसकी आदत-सी हो गई थी।

जब वह तेईस साल का था तो उसके पिता ने उसका विवाह करना चाहा। मगर सदानंद कहने लगा, 'शास्त्रों के अनुसार पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहना नियम है। जब हम जैसे दोस्तों ने उसके पिता की बीमारी की बात चलाकर, उनके जीते जी विवाह करने के लिए कहा तो सदानंद कहने लगा, ''मान लिया मैं तुम्हारी बात मानकर विवाह की तिथि तय भी कर लूँ तो क्या गारंटी है कि पिता जी उससे पहले नहीं मरेंगे। अगर उनकी किस्मत में मेरा विवाह देखना है, तो वे मेरे पच्चीस साल का होने तक भी जिंदा रहेंगे। पिता की मृत्यु उसके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पहले ही हो गई।

यही नहीं जब छब्बीसवें वर्ष में उसकी माँ ने एक बहुत सुंदर युवती उसके लिए चुनी तो उसने यह कह कर मना कर दिया था।

'ऋण कर्ता पिता शत्रु, माताच् व्याभिचारिणी।
रूपवती भार्या शत्रु, पुत्र शत्रु अपंडित।

हालांकि सदानंद स्वयं काफी सुंदर सुदर्शन युवक था। फिर भी उसने एक साधारण नयन नक्श वाली, सांवली-सी लड़की से विवाह किया। लड़की का नाम सुरमई था। उसकी पत्नी की मृत्यु भी विवाह के लगभग डेढ़ वर्ष बाद पहली जच्चगी में ही हो गई थी। हाँ, वह सदानंद को एक बेटा जरूर दे गई थी।

सुरमई भाभी की मृत्यु के लगभग छः महीने बाद सदानंद की माँ ने मुझे बुलाकर, रो-रो कर बताया था कि मैंने सदानंद को दोबारा विवाह के लिए कहा तो उसकी छोटी बहन सुमन तथा स्वयं उसने उन्हें धमका दिया था।

सम्पर्कः 703, जीएचएस-88, पल्लवी, सेक्टर-20, पंचकूला (हरियाणा), पिन-134117

सदानंद जब मुझसे मिलने आया तो मैंने उससे कहा कि इतनी लंबी जिंदगी कैसे कटेगी, खाना वगैरा बनाने, अपने इकलौते लड़के के पालने की जिम्मेवारी निभा सकोगे, तो उसने कहा था कि क्या तुम और मैं पहले खाना खुद नहीं बनाते थे। रही बेटे की बात, तो सुमन अभी आठवीं में है, वह तथा माँ उसे आठ दस साल तक तो पाल ही लेंगे, फिर उसे गुरुकुल या होस्टल में डाल दूँगा। जब मैंने स्त्री सुख की बात की तो वह हँसकर कहने लगा कि जब से मनुष्य ने बुद्धि और वाणी का दुरुपयोग करना सीखा है तब से ही यह कुत्सित स्त्री सुख उसके पतन का कारण बना है।

मैंने उससे कहा था कि तुमने पच्चीस साल तक विवाह इसलिए नहीं किया था कि तुम्हें ब्रह्मचर्य आश्रम निभाना था। अब पच्चीस से पचास साल तक गृहस्थाश्रम हेतु तुम्हें दोबारा विवाह करना चाहिए।

सदानंद ने कहा कि विवाह केवल संतान की प्राप्ति के लिए किया जाता है, क्योंकि पुत्र पैदा करके ही पुरुष पिता का ऋण उतार सकता है और गृहस्थ आश्रम सिर्फ स्त्री सुख ही नहीं बल्कि संतान का पालन पोषण भी गृहस्थ आश्रम है, सो मैं उससे दूर कहाँ भाग रहा हूँ। मैं उसे क्या समझाता, आधी रात तक उसने मुझे अधम, पतित, कामी आदि जाने क्या-क्या सिद्ध कर दिया था, इंद्र, विश्वामित्र आदि कितने ही कामग्रस्त लोगों की कहानियाँ मुझे सुना दी थी।

सदानंद न पत्नी की मृत्यु से दुखी हुआ था और न ही बच्चे के पालन की जिम्मेवारी से परेशान। वह बहन के विवाह तथा माँ की मृत्यु के पश्चात अपने बेटे अभिनव को गुरुकुल या हॉस्टल में नहीं डाल पाया था, बल्कि उसे अपने साथ ही रखा था। बड़े अनुशासित ढंग से उसने अभिनव का पालन पोषण किया था। कमाल का अनुशासन रहा है। सदानंद हमेशा अपने हाथों से खाना बनाता, कपड़े धोना, बरतन साफ करता। प्रीमेडिकल तक तो अभिनव भी काम में पिता का हाथ बंटाता था। फिर वह मेडिकल कॉलेज के हॉस्टल में चला गया था। मगर सदानंद की दिनचर्या वही रही। प्राइवेट कॉलेजों को सरकार ने अधिगृहीत कर लिया था। सो सदानंद का तबादला भी नहीं हुआ था। इस तरह पूरे अट्ठाइस बरस बीत गए थे।

पिछले साल एक हादसा हुआ था। जब अभिनव एम.एस. करके सर्जन हो गया था, पिता से बिना पूछे ही, अपनी एक सहपाठिन से विवाह कर लिया था। हमें लगा कि सदानंद इस हादसे में टूट जाएगा। आखिर उसने सारी उम्र ही तो अभिनव के पीछे गंवा दी थी। अभिनव ने तो उससे विवाह के बारे में पूछना तो दूर बतलाया तक नहीं था। वह तो सदानंद जब उससे मिलने गया तो उसके घर जाकर विवाह की बात का पता चला। यहीं नहीं उस दिन अभिनव के घर में एक पार्टी थी जिसमें अभिनव और मानसी दोनों ने अपने मेहमानों के साथ न केवल मांसाहारी भोजन किया था बल्कि सदानंद ने उन्हें बीयर पीते भी देखा था। जब मैंने इस हादसे पर अफसोस जाहिर किया तो सदानंद हमेशा ही तरह मुस्करा कर कह उठा था, 'अरे भाई! शास्त्रों में लिखा है,

प्राप्तेतु शोडर्ष वर्षे पुत्रं मित्रवत् आचरेत्।

अरे भाई! पुत्र जब सोलह साल का हो जाए तो उसे मित्र मानना चाहिए और मित्र के मांगने पर ही जैसे सलाह दी जाती है, पुत्र के भी मांगने पर ही सलाह देनी चाहिए, अन्यथा नहीं। मुझे और मेरी बीवी को लगा था कि सदानंद के मन को गहरी ठेस लगी है और वह अपना दर्द छुपा रहा है।

मैं अब रोहतक में ही रह रहा था। अभिनव भी रोहतक मेडिकल कॉलेज में सीनियर लेक्चरर के पद पर था। उसने अपने विवाह की भनक हमें भी नहीं होने दी थी।

मैं अभिनव के घर जाकर उससे मिला तो पाया कि वह अपने पिता का सच्चा पुत्र था। उसे भी अपने किए पर कोई पश्चाताप नहीं था। न ही अपने पिता के त्याग का वह खुद को ऋणी समझ रहा था।

उसने कहा, 'अंकल! पिता जी ने कब विधवा दादी जी का कहा माना था, जब दादी बार-बार उन्हें विवाह के लिए कह रही थीं?

मैंने कहा, ''पर यह सब उन्होंने तुम्हारे लिए ही तो किया था।''

अभिनव भी सदानंद की तरह हँस पड़ा था, कहने लगा, 'उन्होंने तो अपना कर्तव्य किया था, अहसान नहीं। उन्होंने अपने पिता का ऋण पैदा करके उतारा था, मेरी परवरिश करके उतारा था। मैं भी उन्हें एक पोता देकर उसकी परवरिश कर अपना खानदानी ऋण उतार दूँगा बस।'

मैंने कहा, ''कम से कम पिता को विवाह से पहले बता तो देते।''

अभिनव ने साफगोई से कहा था, ''अंकल, जिस अनुशासन में मैं पला हूँ क्या यह मुझसे संभव था।'' मैं चुप करके आ गया था। सदानंद से मिलने नाथु श्री चौपटा गया तो उसे उसी तरह

निर्विकार प्रसन्न पाया। मुझे उससे ईर्ष्या होने लगी थी, शायद यह मेरे घर गृहस्थी के बोझ से लदे होने के कारण तथा सदानंद की स्वच्छंदता के कारण अपनी ईर्ष्या थी।

इसी तरह लगभग दो-तीन साल बीत गए। इसी बीच पता चला कि अभिनव व मानसी अमेरिका चले गए हैं। अभिनव पिता को बतला कर गया है कि नहीं मैं नहीं जान सका। हाँ, अब सदानंद का तबादला गोहाना के सरकारी कॉलेज में हो गया था। एक दिन सदानंद का फोन आया। उसने कहा कि मैं उसकी सीट ट्रेन में बेगूसराय के लिए बुक करवा दूँ। मैंने सीट बुक करवा दी थी। सदानंद एक रात पहले मेरे पास आ गया था। अगले दिन उसे दिल्ली से बेगूसराय की रेल पकड़नी थी।

उसने बतलाया कि उसके समधी, मानसी के पिता की अचानक दुर्घटना में मृत्यु हो गई है। वह तेरहवीं पर जा रहा है।

लगभग एक साल बाद पता चला कि सदानंद पदोन्नति प्राप्ति के बाद डिप्टी डायरेक्टर बन चंडीगढ़ चला गया है। मैं भी गृहस्थी की जिम्मेवारियों के कारण उससे मिलने नहीं जा सका। इस तरह दो तीन महीने और बीत गए। मुझे एक अदालती कार्यवाही के सिलसिले में चंडीगढ़ जाना पड़ा। जब चंडीगढ़ गया तो सोचा सदानंद से मिलता चलूँ। सो उसके ऑफिस चला गया।

ऑफिस जाकर, मुझे सदानंद को देखकर आश्चर्य हुआ। आश्चर्य होना था भी आवश्यक, क्योंकि मैंने उसे पहली बार पैंट कमीज पहने देखा था। इससे पहले तो सदानंद पंडितों की तरह धोती कुर्ता ही पहनता था। खैर दफ्तर में तो उसे क्या कहता। शाम के लगभग चार बजे थे उसने मेरे लिए चाय मंगाई, मगर आज तो कदम-कदम पर आश्चर्य बिखरे पड़े थे। चाय को यवनी पेय कहने वाला आज मेरे साथ चाय पी रहा था, बिस्कुट खा रहा था।

पांच बजे दफ्तर का समय खत्म हुआ तो उसकी सरकारी गाड़ी में बैठकर हम उसके सरकारी बंगले पर पहुँचे। मेरी उत्कंठा गले तक आई हुई थी, मगर गाड़ी में ड्राइवर होने के कारण मैं कुछ नहीं कह पाया। सोचा घर में जाकर बच्चू की खबर लूँगा।

घर पहुँचा तो आश्चर्य क्या मैं सदमे से मरता-मरता बचा। कॉलबेल बजाने पर एक सिंदूरवती सुंदर प्रौढ़ा ने दरवाजा खोला तथा 'हाय डॉर्लिंग' कह कर सदानंद का स्वागत किया। सदानंद ने उस महिला से मेरा परिचय करवाते हुए कहा 'मीट डार्लिंग माई चाईल्डहुड चम' (मेरे लंगोटिया यार से मिलो)।

उस स्त्री ने पूछा कि हम क्या लेंगे तो मुझसे पहले ही सदानंद ने कहा कि पहले हम फ्रेश (मुँह हाथ धो लूँ) हो लें। फिर उसने मुझे बाथरूम दिखला दिया। बाथरूम पूरा यूरोपियन ढंग से सजा था। बाथरूम क्या पूरे घर में ही अंग्रेजियत पसरी पड़ी थी। नहा-धोकर बाहर निकला तो सदानंद ने एक चार पांच माह का बच्चा मुझे पकड़ा दिया और बोला, 'अपने भतीजे से मिलो'। मेरे लिए तो ये बस एक दु:स्वप्न या दिवास्वप्न सा था। अभी इस आघात से निजात मिली ही नहीं थी कि नौकर ट्राली लिए हुए आया, ट्राली में व्हिस्की की बोतल थी, नमकीन था।

सदानंद की पत्नी ने आकर बेटा मुझसे ले लिया और कहा 'एंजाय योर सेल्फ' (आप लोग मस्ती कीजिए), फिर वह कमरे से बाहर चली गई। अब सब कुछ मेरी सहनशीलता से बाहर हो चला था। मैंने सदानंद की पीठ पर एक धौल जमाते हुए कहा, ''साले! तू सदानंद ही है या और कोई।'' सदानंद को हमेशा गालियों से चिढ़ रही है मगर आज तो वक्त ही कुछ और था। उसने मुझे एक पैग दिया और कहा 'चियर्स', तो मेरे मुँह से भी निकल गया, 'चियर्स'।

एक लंबी घूंट पीकर सदानंद बोला, 'इससे पहले कि आश्चर्य से तुझे हार्टअटैक हो जाए मैं तेरी जिज्ञासा शांत कर देता हूँ'।

'यार, जब मैं बेगूसराय पहुँचा तो मैंने पाया कि मानसी की माँ माधवी के बुरे हाल थे। मानसी के पिता बेगूसराय के पास बहुत पिछड़े इलाके के गाँव के रहने वाले थे। उनकी असमय मृत्यु की वजह से उनके पार्थिव शरीर को पोस्टमार्टम के बाद गाँव ले जाया गया। पोस्टमार्टम में ही दो दिन लग गए, हालांकि माधवी ने, मानसी व अभिनव को फोन कर दिया था। मगर अभिनव व मानसी दोनों ने कहा कि अगर वे अभी आ गए, तो उन्हें ग्रीन कार्ड नहीं मिलेगा क्योंकि उसके लिए तीन साल तक निरंतर अमेरिका में रहना अनिवार्य है। और उन्हें अभी पौने तीन साल ही हुए हैं। माधवी यह सुनकर टूट गई थी। फिर गाँव में मानसी के पिता अनिरूद्ध के भतीजों ने मुखाग्नि देने से तब तक इंकार कर दिया था जब तक माधवी ने पैतृक जमीन जायदाद पर उनके हक में दस्तखत नहीं किए। जब मैं तेरहवीं पर उनके गाँव

पहुँचा तो माधवी के बुरे हाल थे। मानसी अनिरूद्ध व माधवी की इकलौती संतान थी। वे यूँ तो नौकरी में नायब तहसीलदार थे मगर ईमानदार व्यक्ति थे अतः कोई खास जमा पूंजी नहीं थी। मानसी की मेडिकल पढ़ाई के दौरान भविष्य निधि भी निकलवा ली थी। अब ले देकर पेंशन का सहारा था। अनिरूद्ध के भाई तथा भतीजे न केवल अनपढ़ थे बल्कि सामंतवादी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वैसे भी बिहार का हाल तो तुम अखबारों में पढ़ते ही रहते हो। मृत्यु के समय मानसी के पिता गया में पोस्टेड (नियुक्त) थे। हमेशा शुद्ध हिंदी बोलने वाले, अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग पर नाक भौं सिकोड़ने वाले सदानंद के मुँह से, ऐसी भाषा सुनना अजीब लग रहा था।'

तेरहवीं के बाद कोई भी माधवी के साथ गया जाने को तैयार नहीं हुआ, क्योंकि उनका मतलब यानि जमीन जायदाद हथियाने का तो निकल ही गया था। सो मैंने माधवी के साथ गया जाने का निर्णय ले लिया। पहुँच कर पता चला कि अनिरूद्ध के भाई भतीजे इस बीच गाँव से आए थे और घर का सारा सामान उठा ले गए थे तथा सरकारी क्वार्टर पर नए नायब तहसीलदार साहिब ने कब्जा कर लिया था। हम दोनों अनिरूद्ध के एक मित्र के यहाँ कुछ दिन रुके तथा माधवी की फैमिली पेंशन के कागज तैयार करवाने की कोशिश करने लगे। कई दिन ठहरना था अतः एक दो कमरे का मकान किराए पर ले लिया था। दोनों एक मकान में रहते हुए एक दूसरे से दुःख सुख की बात करते रहते। मैं भी अभिनव के व्यवहार के बाद ऊपर से मजबूत दिखता हुआ भी भीतर से टूट गया था। विजातीय विवाह वह भी बिना मुझसे बतलाए, फिर मेरी मौजूदगी में मद्यपान, मांसाहार जो तुमने भी मेरे सामने कभी नहीं किया था, क्या टूटने के लिए काफी नहीं था।

इधर अनिरूद्ध की मृत्यु पर मानसी व अभिनव के नग्न स्वार्थ प्रदर्शन ने माधवी व मुझे झकझोर दिया था। एक दिन रात को माधवी रोते हुए कहने लगी, बच्चे इतने स्वार्थी भी हो सकते हैं, मैं सोच भी नहीं सकती थी।

मेरे मुँह से निकल गया, जब सारी दुनिया ही स्वार्थी हो सकती है तो हम दोनों ही यह सब क्यों झेलें। माधवी और हम दो अजनबियों को हालात ने दुखों के सागर में एक नाव में पटक दिया है तो क्यों न हम दोनों इसे मिलकर खेवें, बस उसके बाद तो सब कुछ स्वतः हो गया। हमें भी कुछ पता नहीं चला। पता लगा तब तक छोटू माधवी के पेट में आ गया था। एक बार अबार्शन करवाने की भी सोची, शायद करवा भी लेते। मगर उसी रात मानसी व अभिनव आ गए थे। अमेरिका में उन्हें ग्रीन कार्ड मिल गया था। मेरे धोती कुर्ते की जगह रेडीमेड जींस व टीशर्ट ने ले ली थी। सो हमें इस रूप में पाकर मानसी व अभिनव भौचक्के रह गए। उस दिन माधवी को उल्टियाँ लगी थीं जिन का कारण मानसी की चिकित्सीय दृष्टि से छुपा नहीं रह सका। मानसी का सामंती संस्कार, फन उठाकर खड़ा हो गया था। उस रात वह माधवी पर चीख पड़ी, ''छिनाल, पिता के मरते ही समधी के साथ गुलछर्रे उड़ाने शुरू कर दिए, मर क्यों नहीं गई।'' वह और भी कुछ कहती मगर मैं उठ खड़ा हुआ और कह उठा, ''बस चुप! एक शब्द भी मत कहना मेरी को तुम दोनों हमारे घर से निकल जाओ, अभी इसी वक्त।''

वे दोनों कुछ देर खड़े रहे, फिर अभिनव ने मानसी का हाथ पकड़ा और वे चले गए।

मैं माधवी को लेकर यहाँ आ गया। पहले दिल्ली में मकान लिया, इसी बीच मेरी पदोन्नति और तबादला चंड़ीगढ़ हो गया। यहाँ सब ठीक है, अब बोलो।'

मेरे मुँह से निकला, 'मगर सदानंद तुम्हारे शास्त्र?'

सदानंद ने चुपचाप उठकर सी.डी. प्लेयर चला दिया, उसमें गाना बज उठा:

आगे भी जाने ना तू-पीछे भी जाने ना तू
यही एक वक्त करले पूरी आरजू।

मैंने देखा सदानंद मुस्करा रहा था। मैंने फिर टोका, ''मगर तुम्हारे शास्त्र।'' सदानंद कहने लगा, शास्त्र भी यही कहते हैं सुनो-

यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत्
ऋणम् कृत्वा घृतम् पीवेत्
भष्मी भूतस्य् अस्य देहानाम्।
पुनर्जन्मः कृतः

(भाई मेरे, जान है तो जहान है, जब तक जीओ, सुख से जीओ, चाहे उधार लो मगर घी पीओ। यह शरीर भस्मी से पैदा हुआ है, भस्म होना ही इसकी नियति है, दूसरा जन्म किसने देखा है, जो कुछ है बस यहीं है इसी जन्म में है)

***

लापता

जसविंदर शर्मा

"डिमेंशिया नाम का रोग सुना होगा आपने। इसमें स्मरण शक्ति खत्म हो जाती है। रोजाना की आम गतिविधियां नहीं कर सकता वह आदमी। बातचीत में ठहराव नहीं रहता, कोई फोकस नहीं। बच्चों से भी गया गुजरा हो जाता है। बच्चा तो फिर भी हर रोज नई बात सीखता है मगर पापा जैसा आदमी लगातार भूलता जाता है। आसपास, अपने आपको। अपने शरीर के अंगों से नियंत्रण घटता जाता है उनका।"

जी हां, आपने सही पहचाना। वह मेरे पापा ही हैं-त्रिलोकी नाथ चौहान।

है न भारी भरकम नाम। बहुत कड़क आदमी हैं जनाब। अपने समय के कलंदर।

एक वाक्य बोलकर सबको चुप करवा देते थे-डोंट ट्राई टू बी ओवरस्मार्ट। मैं तो क्या हर आदमी जो उनसे वाबस्ता था, उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता था। एन्साइक्लोपीडिया तो फिर छोटा शब्द है उनके सामने। कोई कहता कि वह अपने आप में एक बहुत बड़ी संस्था थे।

हर चीज में उनका दखल काबिले गौर था-संगीत, कविता, धर्म, विज्ञान, इतिहास या राजनीति। आप बात करके देखते उस समय।

उनके सामने बहुत छोटा महसूस करते थे हम। उनका हर वाक्य एक कमांड होता था और हरेक शब्द एक संदेश। कभी अपनी पीठ नहीं लगने दी उन्होंने।

उनका सबसे बड़ा प्लस प्वाईंट यह था कि बहुत बेदाग चरित्र के मालिक थे वह। साफ सुथरी छवि के मालिक। कभी कोई अनर्गल बात नहीं करते थे। जो बात आज उन्होंने कही दस साल बाद भी वही है हू ब हू। हजारों लोगों के नाम मानो तोते की तरह रटे हुए थे।

अब कहां हैं? जी हां, जिन्दा हैं अभी।

जिन्दा भी ऐसे मानो मांस का लोथड़ा हो। दिन में पता नहीं कितनी बार हिंसक हो उठते हैं। घर के एक कमरे में कैद करके रखना पड़ता है उन्हें। ताला लगाकर।

डिमेंशिया नाम का रोग सुना होगा आपने। इसमें स्मरण शक्ति खत्म हो जाती है। रोजाना की आम गतिविधियां नहीं कर सकता वह आदमी। बातचीत में ठहराव नहीं रहता, कोई फोकस नहीं। बच्चों से भी गया गुजरा हो जाता है। बच्चा तो फिर भी हर रोज नई बात सीखता है मगर पापा जैसा आदमी लगातार भूलता जाता है। आसपास, अपने आपको। अपने शरीर के अंगों से नियंत्रण घटता जाता है उनका।

कई रूप हैं इस बीमारी के। मैं तो ठीक से बता भी नहीं पाऊंगा। अल्ज़ाइमर रोग है या कुछ और।

सम्पर्क: 205, जी एच-3, सेक्टर-24, पंचकूला-134109, हरियाणा, मो: 9872430707, ई-मेल: sjasvinder2017@gmail.com

मगर जो भी है आदमी आलू गोभी की तरह हो जाता है। सामने है मगर उसका वजूद न के बराबर। अपने आप में गुम हो गया लगता है। खो गया लगता है।

लापता हो जैसे।

हम लोग पापा को कई अस्पतालों में ले गए। शुरू-शुरू में पापा का कुछ और ही रूप था। अब शुरुआत थी शायद।

डॉक्टर पूछता – क्या नाम है?

पापा चौकन्ने होकर जवाब देते – त्रिलोकी नाथ चौहान।

डॉक्टर सहम जाता है – अरे, आप हैं सर। बहुत नाम सुना है आपका। आपको कौन नहीं जानता। आपने तो बहुत बड़े बड़े काम किए हैं जो कोई दूसरा नहीं कर सकता।

पापा मुस्कराते, अजीब सी दंभभरी मुस्कराहट। चेहरे पर अहंकार भरे भाव आ जाते उनके।

शुरू के सालों में पापा अपनी यह बीमारी मिलने वालों पर जाहिर नहीं होने देते थे। घर में कोई भी आता उससे मिलकर खुश हो जाते। भले ही पहचानते नहीं मगर आने वाले के पास बैठते। बेशक कुछ न पूछते मगर ऐसा भी नहीं कि कोई रुचि न लेते हों। कहते-खाना खाया, कब आए हो।

दो चार बातों तक ही महदूद हो गया था उनका सारा अस्तित्व।

फिर धीरे-धीरे अपने कमरे में ही रहने लगे।

सबसे बुरी बात तब हुई जब वह आईने में अपनी ही सूरत भूल जाते। खुद को कोई अन्य समझकर अपने अक्स से बात करने लगते।

फिर आसपास से बेखबर होने लगे। सुबह को शाम समझने लगे। दिन तारीख तो अब क्या याद रखनी थी उन्होंने। कुछ बातों की जिद पकड़ लेते। कभी अपने घर की बालकनी में हम पापा को बिठाते तो कुछ देर बाद वह अपने कमरे या बालकनी का ठिकाना भूल जाते।

खाने को लेकर बहुत लोचा होने लगा। उन्हें कभी तो बहुत भूख लगती तो किसी दिन उन्हें चाय के साथ बिस्कुट खिलाना भी मुसीबत हो जाता हम लोगों के लिए।

कभी अपने स्वर्गीय पिता को याद करने लगते। कहते मुझे उनके पास छोड़ आओ। मम्मी समझातीं-आप 90 के हैं तो आपके पिता तो कब के स्वर्ग सिधार गए होंगे।

हैरान होकर पूछते – अच्छा कब मरे? मुझे बताया क्यूं नहीं। उनकी आंखों से आंसू छलकने लगते।

पापा की स्मरण शक्ति बहुत तेजी से घटती जा रही थी। अब मुझे पहचानते थे या मेरी मम्मी को। मम्मी उनसे दस साल छोटी थीं। सेहत तो उनकी भी अच्छी नहीं थी।

बहुत क्षुद्र जीव है यह आदमी। ज्यादा देर तक शासन नहीं चला सकता। दूसरों पर ठीक है। दूसरों को चालीस पचास बरस काबू कर लेगा मगर खुद अपने शरीर से नियंत्रण हट जाए तो बहुत मुसीबत आ जाती है। खुद के साथ समीकरण बिगड़ जाए तो साथ वालों की जिंदगी हराम हो जाती है।

आपका कहना अपनी जगह सही। सब के साथ नहीं होता ऐसा।

इंग्लैंड की रानी नब्बे के ऊपर है। खूब कर रही है राज। अजी क्या पावर है उसके पास। औपचारिक रूप से बस सोने की मुहर ही है। हां, बस इतनी सी पावर हो तो आदमी का दिमाग खराब नहीं होता।

पापा से मनोचिकित्सक उनके आसपास बैठे लोगों के बारे में पूछता – यह कौन है?

पापा तिरस्कार के भाव से कहते – यह मेरा नालायक बेटा है। कुछ नहीं हो सका इससे। नेशनल डिफेंस एकाडेमी से भाग आया। अब अपना बिजनेस चौपट करके बैठा है।

मुझसे बहुत आपेक्षाएं थी पापा की। खुद तो बहुत बड़े महत्वाकांक्षी थे ही, मुझे लेकर कुछ ज्यादा ही पोजेसिव थे। मुझे अपने से भी ऊपर देखना चाहते थे।

जब मैं आर्मी अफसर के प्रशिक्षण केंद्र से भाग आया और इधर-उधर हाथ-पांव मार रहा था तब पापा मुझे उलाहने देते। बार-बार कहते-"मैं खाली हाथ आया था दिल्ली। बाप की पांच रुपए महीने की पेंशन थी। खाने वाले दस जीव थे। अब तुम्हारे लिए चंडीगढ़ में दो कनाल की कोठी बनवाई है मैंने। दस एकड़ का फार्म हाऊस है। घर में चार कारें खड़ी है। तुमने क्या किया? मेरा नाम को बट्टा लगा दिया।"

मेरी हर चीज से शिकायत थी पापा को। मैं उनकी किसी अपेक्षा पर खरा नहीं उतरा।

मैं क्या बनना चाहता था? अरे साहब जब से होश संभाला मुझसे किसी ने पूछा ही नहीं। बस हुक्म दे दिया जाता कि ये कर लो, वो कर लो।

पूरे इलाके में पापा का इतना ज्यादा रौब था, रसूख था। एक से एक बढ़िया स्कूल में मुझे दाखिला मिल जाता। कॉलेज में आराम

से एडमिशन मिल जाता। टीचर मुझसे खौफ खाते कि कहीं मेरे पापा उनके खिलाफ किसी को टेलीफोन न कर दें।

एक वक्त था शहर की बहुत बड़ी ताकत का पर्याय थे वह, बहुत बड़ी हस्ती थे पापा। सब कुछ भगवान की देन थी। इतने ज्यादा पढ़ते नहीं थे। बस दिमाग बहुत बड़ा था। पता नहीं सब कुछ कैसे समा जाता था। सुबह अखबार पढ़ते थे। याददाश्त बहुत गजब की थी। सामने वाले को तर्क देने लायक नहीं छोड़ते थे।

बहुत सारी महत्वपूर्ण घटनाएं थी उनके जीवन की। फौज में सीधे अफसर बनकर गए थे। आजादी के तुरंत बाद पुलिस के बड़े अफसर आर्मी से लिए गए। पापा की टॉप के लोगों में गिनती होने लगी। काम के माहिर थे और राजनीति से दूर। नेताओं ने खूब फायदा उठाया पापा का। पापा को अच्छे प्रभार मिलते। जहां-जहां दंगा या अलगाववादी उपद्रव होते, पापा ने हीरो की तरह काम किया।

मैं क्या-क्या बताऊंगा। आप गूगल से पूछ लेना।

वह बताते-बताते थकेगा नहीं मगर आप सुनते-सुनते बोर हो जाएंगे।

हम परिवारवाले बुरी तरह पक गए थे पापा की इस मशहूरी से।

उसका हमारी नार्मल लाइफ पर बहुत बुरा असर पड़ा।

मां की जुबान चली गई।

जी नहीं, गूंगी नहीं हुई। पापा के सामने बौनी होती गई। विरोध नहीं कर पाती थीं। पापा ने जो कह दिया वह पत्थर की लकीर।

मैं खुद। कहां-कहां नहीं धकेला गया मुझे। और मैं था कि हर जगह नाकाम करार दे दिया जाता क्योंकि मैं वह सब नहीं चाहता था।

क्या नहीं चाहता था?

अजी सोचने का मौका ही कब मिला मुझे। पापा ही हावी रहे मेरी सोच पर।

रिटायरमेंट भी बहुत लंबी थी पापा की। 80 साल की उम्र तक तो वह बहुत सक्रिय रहे। कई तरह के असाईनमेंट मिलते रहे पापा को। विदेशों में भी जाते रहते थे। हर समय सूटकेस तैयार रहता।

बस एक ही बात बताई जाती हमें - दिल्ली जा रहे हैं।

हमारी सांस में सांस आती कि कुछ दिन आराम से कटेंगे।

समय बदला, लोग बदले, सरकारें बदली। पापा का स्थान दूसरे लोगों ने ले लिया। पापा की उपयोगिता कम होती जा रही थी। अब ईमानदारी की कोई कीमत नहीं रह गई थी। पापा अनवांटिड हो गए। समय सापेक्ष नहीं रहे। बूढ़े भी हो गए।

जब पापा की उम्र 85 से 90 के बीच थी तब पाप रूतबे से घटते गए। चिड़चिड़े हो गए। मैं 60 का हो गया था।

क्या करता हूँ?

छोटे-मोटे धंधे करता हूं। पापा ने इतना कुछ जमा कर लिया उसे संभालता हूँ।

लोगों ने पापा से मिलना छोड़ दिया। पापा अपने कमरे में अकेले होते गए।

कभी-कभार कुछ लिखते। वह दिखाऊंगा आपको। मेरे तो कुछ पल्ले नहीं पड़ा। देश की राजनीति पर कुछ निबंध वगैरा है।

जी हां, पापा का लिखा दिखाया था प्रकाशकों को। वे कहते हैं कि बिकेगा नहीं। अगर बीस साल पहले लिखा होता तो शायद कुछ करते।

इंसान की यही लिमिटेशन है। समय पर खरीदा माल समय पर ही बेच देना चाहिए। बाद में कोई कीमत नहीं मिलती।

पापा को अब घर में बांधकर रखना भी अपने आप में फुलटाइम काम होता जा रहा था। किसी को कुछ नहीं समझते थे वह। किसी का कहना नहीं मानते थे। मम्मी को समझते थे कि घर की नौकरानी है।

मैं अब उन से खुलकर झगड़ने लगा था। शायद तभी मेरे काबू में आ जाते थे। अब मेरा डर खत्म हो गया था। पापा अब ऐसे बूढ़े शेर थे जिसके दांत टूट चुके थे और गुर्राना भी वह भूल चुके थे।

अब एक नई मुसीबत का सामना करना पड़ रहा था हमें। पापा बिन बताए मौका पाते ही घर से निकल जाते।

एक बार नहीं बार-बार घर से निकल कर भागे वह। पहले तो यहीं अपने एरिया में ही गुम हो जाते। हम ढूंढ लाते या कोई जान पहचान वाला छोड़ जाता।

दाढ़ी बढ़ आई थी उनकी। शक्ल बदल गई थी। शहर बदल गया था। दुकानदारों को तो पापा की बीमारी के बारे में पता था मगर जान-पहचान के पुराने लोग कम होते जा रहे थे। कुछ बच्चों के साथ चले गए। कुछ मर-मरा गए।

यह चंडीगढ़ है न। यहाँ सारे सेक्टर एक समान लगते हैं। सेक्टर 35 की मार्किट और सेक्टर 36 की मार्किट में फर्क करना मुश्किल हो जाता है। चौक, मकान, मोड़ सब एक जैसे दिखते हैं।

अब पापा को काबू करना सच में मुश्किल हो गया था। जरा-सा मौका मिलता, वह निकल भागते। दीवार फांद लेते।

सारी उम्र दिल्ली जाते रहते थे। अब भी हर वक्त एक ही रट लगाते, 'मुझे दिल्ली ले चलो। वहाँ मेरे पिताजी हैं। उनकी देखभाल कौन करता होगा।' मम्मी रोने लगती। पापा पर कोई असर नहीं होता था।

बाकी के सारे रिश्तेदार भूल गए थे उन्हें। सिर्फ मुझे नहीं भूले। हम उनके गले में या बाजू पर नाम, पता या मेरे मोबाइल का नंबर लिखा रिबन बांध देते मगर वह उसे उखाड़ कर फेंक देते। कमीज के कालर या बाजू के कॅफ के अंदर लिखा रहता पेन से। मगर किसी दूसरे को क्या पड़ी है। आजकल आदमी अपने आप से बेखबर रहने लगा है। किसी दूसरे की तरफ देखता तक नहीं। पुलिस? अरे साहब उनका अपना पेट नहीं भरता। वह आम नागरिक की मदद क्यूं करने लगी भला।

एक दिन वही हुआ जिसका हमें हर वक्त डर सताता रहता था।

पापा लापता हो गए।

हर वक्त दिल्ली जाने की रट लगाते रहते थे। तो किसी ने दिल्ली की बस में बिठा दिया होगा।

अब दिल्ली तो एक समुंदर है। हम लोग यहाँ अपने शहर, अंबाला, पटियाला में ढूंढ़ते रहे। पुलिस स्टेशन, वृद्धाश्रम, बस स्टैंड, रेलवे स्टेशन, सराय सब जगह। दो आदमी रखे पैसे देकर। उन्हें हर रोज सब तरफ भेजते। लापता होने के पोस्टर भी लगवाए। अखबारों में कई दिन विज्ञापन दिया।

पापा सेक्टर 35 के स्टेट बैंक से अपनी पेंशन लेते थे। वहाँ पता किया। मम्मी के नाम पेंशन लगवाने की बात हुई तो वे बोले किसी जगह से मृत्यु का प्रमाण पत्र लाओ। या कुछ साल इंतजार करो। उसके बाद कचहरी से लापता होकर मरा हुआ जानकर ऐसा प्रमाण पत्र मिल जाएगा।

साल बीता कोई खबर नहीं पापा की।

घर का बंदा गुम हो जाए तो कितना तकलीफदेह हो जाता है रहना सहना। हर रोज एक आस जगती है। फिर इस उम्र का आदमी घर से चला जाए तो सोच कर देखिए जनाब।

हम चुप हो कर बैठे थे। क्या कर सकते थे हम।

फिर एक दिन बैंक से मुझे फोन आया कि आपके पापा जिंदा हैं।

दिल्ली में सरकारी अस्पताल एम्स में भर्ती हैं।

आखिर दिल्ली जाकर ही दम लिया पापा ने।

वहाँ पता नहीं कहां-कहां भटकते रहे होंगे। बीमार हुए तो किसी ने लावारिस समझकर एम्स में भर्ती करवा दिया होगा। अंग्रेजी बोलते थे तो किसी ने सोचा कि अच्छे घर के होंगे। अपना नाम तक याद नहीं था पापा को।

कैसे पता चला।

डॉक्टर लोग हर रोज उनसे बातचीत करते होंगे तो एक दिन अचानक पापा ने बोला - त्रिलोकी नाथ चौहान, स्टेट बैंक, सेक्टर-35, चंडीगढ़।

वहाँ के लोगों ने यहाँ नंबर मिलाया और बैंक वालों ने मुझे सूचित किया।

मैं पापा को लेने के लिए निकला। मन में गुस्सा भी था और अपराधबोध भी कि हम उनकी परवरिश ठीक से नहीं कर रहे हैं।

लावारिस की तरह जनरल वार्ड में पड़े मिले वह। गंदे से कपड़ों में। बहुत शर्म आई। बहुत देर लगी यह बताने में कि मैं उनका बेटा हूँ। बिल्कुल पराये से लग रहे थे। आंखों में कोई भाव नहीं। कोई भी ले जाता उन्हें वहाँ से।

मुझे उनके खर्च की फीस भरने को कहा गया। मैं दो लाख नकद लेकर गया था। काउंटर पर बैठे आदमी ने बताया - एक हजार दो सौ साठ रुपए।

मेरा यकीन करना साहब।

बहुत पत्थर दिल इंसान हूं मैं मगर पहली बार फूट-फूट कर मेरे आंसू निकले। गला रूंध गया। वाह रे खुदा। ये मैं क्या देख रहा हूं। कितने दिनों से यह आदमी यहाँ फटेहाल पड़ा है। अब कहीं भागने की हिम्मत भी नहीं रही इसकी।

मैं घर ले आया उन्हें। लाश जैसे थे वह। कार की सीट बेल्ट से बांधकर। बार-बार लुढ़क जाते।

अब तो सब शांत है।

जिंदा हैं बस। मुझे भी बहुत बार नहीं पहचानते।

पता नहीं किस बात का इंतजार है उन्हें। तरस आता है। जीवन की नियति यही होती है क्या? तमाम उम्र कितनी भागदौड़ करते हैं हम। चोरी, डाका, फरेब, झगड़े।

और अंत में क्या शेष रहता है। एक शून्य, एक गुमशुदगी और खोई हुई अस्मिता। अपने आप में कोई इतना लापता कैसे हो सकता है भला...

... कुछ दिनों से मैं भी कुछ कुछ भूलता जा रहा हूं...

***

परितृप्ति का जीवन दर्शन

सत्येंद्र चतुर्वेदी

...और दूसरी ओर टीन, खपरैलों अथवा मुक्तव्योम के झिलमिलाते चंदोबे के तले रहने वाला अधनंगा-कदाचित अधभूखा भी-वह बादशाह फकीर जो मुझे यानी सारे तथाकथित सभ्य सफेदपोश समाज को धिक्कार रहा है-ऐसा अर्थहीन झूठा निस्सार जीवन जीने के लिए... और खुली दावत दे रहा है-उस विराट प्रकृति के उन सतरंगी विमोहक नायाब नजारों का एकांत, एकटक साक्षी बनने की

"बाबूजी जरा छतरी बंद कीजिये''—उस दिन, सहसा, मेरे कानों में ये शब्द पड़े। बाजार के भीड़-भड़क्के में से गुजर रहा था, चौंका—कहीं मेरे छतरी खोल कर चलने से किसी को मुक्त आवागमन में कोई बाधा तो नहीं पड़ रही-आखिर खुली छतरी को जगह का ज्यादा फैलाव तो चाहिये ही... मुड़ कर पीछे देखा, एक अलमस्त युवक तार-तार बनियान और उचकी धोती पहिने साईकिल पर झूमता-झामता वर्षा की रिमझिम फुहारों की ताल पर सिर हिलाता—मानो मस्ती का अपूर्व आसव पिये-चला जा रहा था...

मेरी पहली प्रतिक्रिया कुछ झुंझलाहट, आक्रोश की हुई... उसको क्या मतलब... मुझको छतरी में आराम से जाते हुए देख कर क्या उसे ईर्ष्या हुई अथवा कहीं 'वर्ग वैषम्य' की साम्यवादी व्याख्या तो यहाँ चरितार्थ नहीं हो रही—क्षणांश में कई मिले-जुले विचार मनमथित करने लगे। मैंने एक मुहुर्त के लिए साभिप्राय दृष्टि से उसकी ओर देखा पर मुझे उसकी मुख मुद्रा, भावभंगिमा में कहीं पर भी तो तिक्तता या किसी शिकायत कर चिह्न नजर नहीं आया। हाँ, गहरे में जाने पर उसके कथन में अगर कोई ध्वनि लक्षित कर सका तो वह सहज अनुरोध, उपालम्भ, आग्रह की थी... एक सरस सुझाव और आत्मीय आमंत्रण की थी... मधुर झिड़की की झंकार थी कि एकदम छतरी बंद कर क्यों न मुझे भी-उसी की तरह-फुहारों की कथकली में रसमग्न हो वो सारा रास्ता तय करना चाहिए... एक तरफ वर्षा की सुहानी, मदमाती रम्यवेला... दूसरी और कृत्रिम असहज कपट व्यवहारों, व्यापारी से संकुल मनुष्य, जो आज हर तरह के वाणी व्यवहार, अनौपचारिक रिश्तों के सहज खुलेपन से कतराता है। वह शायद नित नये मुखौटों, बेमानी तेवरों को ही अपने लिए वरेण्य जीवन मूल्य समझ बैठा है और इसलिए वह आज मान, अहंभाव, श्रेष्ठताग्रंथि और भी तरह-तरह की आत्मवंचनाओं, दूसरी मानसिक उलझनों का शिकार, अपने हमसायों से दूर... बहुत दूर होता चला जा रहा है। न खुले मन, खुली आँखों से, खुली प्रकृति, खुले आसमान को, आत्म विभोर हो-पलभर निहारने का उसे अवकाश है और न अपने बिरादर आमदजाद बंदो से, ललक कर गले मिलने का उसमें दिलकश हमजोलीपन... बस ईर्ष्या-द्वेष, आपाधापी, असीम आकांक्षाओं

सम्पर्कः 205, जी एच-3, सेक्टर-24, पंचकूला-134109, हरियाणा, मोः 9872430707, ई-मेलः sjasvinder2017@gmail.com

की दुर्वह गठरी सर पर लादे एक प्राणशोषी, कुंठा, तनाव और ऐंठन के आलम में लदाफदा बदहवास, अपनी ही झोंक में बहा चला जा रहा है...और दूसरी ओर टीन, खपरैलों अथवा मुक्तव्योम के झिलमिलाते चंदोबे के तले रहने वाला अधनंगा-कदाचित अधभूखा भी-वह बादशाह फकीर जो मुझे यानी सारे तथाकथित सभ्य सफेदपोश समाज को धिक्कार रहा है-ऐसा अर्थहीन झूठा निस्सार जीवन जीने के लिए... और खुली दावत दे रहा है-उस विराट प्रकृति के उन सतरंगी विमोहक नायाब नजारों का एकांत, एकटक साक्षी बनने की... अनमोल अनिर्वचनीय उस आनंद रस का छक कर पान करने की...।

और आज भी, अजाने में, जब अंतर में वह दृश्य कौंध उठता है, मन में तीव्र, भूडोल शुरू हो जाता है... आत्मभर्त्सना, ग्लानिबोध से क्षुब्ध विचलित होने लगता हूँ... काश, उस दिन छतरी की दीवार को परे हटा, मैं उस अल्हड़ शहंशाह की दिव्य दावत को कुबूल कर सकता...

***

फिजी संदेश का विमोचन

नई दिल्ली स्थित फिजी उच्चायोग ने 'फिजी संदेश' नामक नई हिंदी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया है। इसके प्रवेशांक का लोकार्पण 9 नवंबर को फिजी उच्चायोग द्वारा आयोजित एक समारोह में किया गया।

इस अवसर पर भारत में फिजी के उच्चायोग महामहिम श्री योगेश पुंजा ने कहा कि इस पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य फिजी की सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों से हिंदी पाठकों को परिचित कराना और भारत के साथ फिजी के मैत्रीपूर्ण द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत बनाना है।

श्री पुंजा ने यह भी कहा कि हिंदी फिजी की राजभाषाओं में एक है तथा फिजी के सभी छात्रों को माध्यमिक स्तर तक अनिवार्य विषय के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। उन्होंने भारत सरकार के इस निर्णय का स्वागत किया कि अगला विश्व हिंदी सम्मेलन फिजी में आयोजित किया जाएगा।

इस अवसर पर विदेश मंत्रालय में संयुक्त सचिव श्री अशोक कुमार, केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष डॉ. कमल किशोर गोयनका, सुप्रसिद्ध हिंदी कवि प्रो. अशोक चक्रधर, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद् के मानद निदेशक श्री नारायण कुमार, मीडिया विशेषज्ञ श्री संदीप मारवाह सहित अनेक राजनयिक और सुप्रसिद्ध व्यक्ति उपस्थित थे।

जनहित

संदीप तोमर

एक मास्टर था, दूसरा वैज्ञानिक। दोनों ही अलमस्त। पहले ने मास्टरी छोड़ी तो दूसरे ने वैज्ञानिक पद से इस्तीफा दे दिया। दोनों ही आला दर्जे के फक्कड़।

वैज्ञानिक महोदय नई खोज के जुनून पाले रहते तो मास्टर साहब उनके लिए फंड का जुगाड़ लगाते।

एक शाम को वैज्ञानिक महोदय मास्टर साहब के पास आये, बोले–''एक जबरदस्त खोज होने वाली है। एयर प्रेशर से टॉयलेट साफ करने का सूत्र हाथ लगा है। सैद्धांतिक तौर पर कामयाबी मिल गयी। बस दो चीजों का इंतजाम करना है, एक सिलेंडर और दूसरा एक कमोड। लोहे का खांचा बनाने में, डाई बनाने में बड़ा खर्च आएगा। कुछ जुगाड़ लगाइये, ताकि इस काम को अंजाम दिया जा सके।''

''हाँ, काम तो चलेगा लेकिन...।''

''फिर ठीक हैं।'' कहकर मास्टर साहब ने कमोड़ उखाड़ने के लिए अभी पहला वार ही किया था कि रेलवे का चौकीदार आ धमका। आवाज सुनकर उसने दोनों को बोगी से उतारा और गरजकर बोला—''चोरी करते हो। अभी तुम्हें ठीक करता हूँ।''

वैज्ञानिक साहब को प्रोजेक्ट जेल में रहकर सड़ता नजर आया लेकिन मास्टर साहब ने बात संभाली—''देखिये कोतवाल साहब, हम ये चोरी देश हित में कर रहे हैं। ये बहुत बड़े वैज्ञानिक हैं। अपने प्रयोग से कम पानी में धोने और साफ करने की सुविधा देने वाले हैं। आपके सहयोग से ये सब संभव हो सकता है। देश आपका ऋणी रहेगा।''

मास्टर साहब ने सौ का मुड़ा-तुड़ा नोट उसकी ओर बढ़ाकर पूरी योजना समझा दी।

चौकीदार को खुद को कोतवाल सुनना बेहद अच्छा लगा। उसने सौ का नोट अपने खाकी कोट की जेब में ठूंसते हुए थोड़ा डपटने के लहजे में कहा—''ठीक है-ठीक है। लेकिन खबरदार इस कमोड़ का उपयोग जनहित में ही होना चाहिए।

***

सम्पर्क: ई-मेल: gangdhari.sandy@gmail.com

नींव के पत्थर

आशा शर्मा

उद्घाटन से पहले ही पुल भरभरा के गिर पड़ा। मीडिया ने मुद्दे को हवा दी और मामला मंत्रालय तक जा पहुंचा। आनन-फानन जांच कमेटी बनाई गई और इसकी लपटों ने पूरे सार्वजनिक निर्माण विभाग को घेर लिया। साईट इंजीनियर राकेश को ठेकेदार पर गुस्सा आ रहा था—''अरे! नींव के पत्थरों में तो कम से कम सीमेंट और धूल का अनुपात सही रखना था... ठीक है। आटे में नमक तो चलता है मगर इसने तो नमक में आटा डालकर मेरी नौकरी ही दांव पर लगा दी।''

आखिर वही हुआ जिसका राकेश को डर था। विभाग ने उसे बलि का बकरा बनाते हुए नौकरी से बर्खास्त करने की अनुशंसा कर दी। पिताजी ने सुना तो सिर पीट लिया। उन्हें याद आया वो दिन जब पहली बार राकेश रिश्वत की कमाई घर लाया था।

''बस! ऐसे ही लक्ष्मी घर आती रहे... अब ऊपरी मंजिलों का काम शुरू करवा लेते हैं'', उन्होंने भी बेटे को उकसाया था।

इसके साथ ही पिता की नसीहत भी दिमाग में कौंध गई जो राकेश के जन्म के समय उन्होंने दी थी—''बेटा! घर चाहे छोटा बनवाना मगर नींव के पत्थर मजबूत रखना। वही इमारतें बुलंदियां छूती हैं जिनकी नींव मजबूत होती है।''

राकेश के संस्कारों की ईमारत में नींव के पत्थर रखते समय उन्होंने ईमानदारी की सीमेंट में रिश्वत की धूल अनुपात से कहीं ज्यादा मिला दी थी।

***

सम्पर्क: ए-123, करणीनगर (लालगढ़), बीकानेर-334001

टीआरपी

मृदुला श्रीवास्तव

'पानी में फंस कर आपको कैसा लग रहा है?—पत्रकार ने माइक आगे करते हुए पानी ने डूबे घरों के भीतर से झांकते लोगों से पूछा ही था कि तभी एक कार पानी में से भड़भड़ाती निकली और पत्रकार को ऊपर से नीचे तक गीला कर गई। पत्रकार को लगा मानो किसी ने उसे गीला न कर उसके कपड़े उतार कर उसे नग्न कर दिया हो, पर फिर भी पानी में डूबे लोगों से वही प्रश्न—''पानी में डूबने पर आपको कैसा लग रहा है।''

ओए अपना काम कर या फिर डूब कर देख ले कि हमें कैसा लग रहा है'' कोई कहता इससे पहले उनमें से वही खड़ा एक बच्चा बोल पड़ा—''अंतल अंतल जी' जैछा आपको दीला होतर लग ला है बिल्कुल बैछा ही हमको भी लग रहा है।''

लोगों के दुख को चैनल के लिए भुनाता पत्रकार अब पतली गली से निकल लिया था। कहाँ गया होगा? वो जाने और उसके वहाँ उसके उतरे पड़े कपड़े। हमें क्या?

***

सम्पर्क: फ्लैट सं. 3, द्वितीय तल, हिमाचल अर्पाटमेंट्स, गोल्डी जनरल स्टोर के पास, कुसुम्पटी, शिमला-171009 (हि.प्र.), ई-मेल: srivastva1464@yahoo.co.on

रेप केस

महावीर राजी

ऑफिस आवर्स का व्यस्त समय। रोड पर ट्रैफिक की रेलपेल। तभी तेज दौड़ती कार का अचानक ब्रेक फेल हो गया और वह लैंप पोस्ट से टकरा गयी। कार की पिछली सीट पर दसेक साल की एक लड़की बैठी थी। कार के पास मजमा जुट गया। एक व्यक्ति ने हड़बड़ा कर ख्यात अखबार के दफ्तर में फोन लगाया—'आपके दफ्तर के पास एक्सीडेंट हुआ। कार के भीतर आठेक साल की लड़की...'

'लड़की...? उधर से बीच में ही उत्तेजना में सरसराती आवाज टप्पा खाती उछली—'क्या उसका रेप हुआ?'

'नहीं नहीं... लड़की घायल हुई...।'

'रेप नहीं हुआ तो फोन क्यों किया?'

'एक्सीडेंट की रिपोर्टिंग...'

'रेप केस होता तो रिपोर्टिंग जमती भी। ऐसे एक्सीडेंट तो होते ही रहते हैं यार...।' उधर से गुस्से में फोन पटक दिया गया।

***

सम्पर्क: प्रिंस, केडिया मार्केट, आसनसोल-713301, (प. बं.), ई-मेल: mahabirraji@gmail.com

पागल

पुष्पेश कुमार पुष्प

शहर के कोलाहल से दूर। गंगा तट का किनारा, शांत वातावरण और छटा बिखेरती हरियाली लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती। सुबह के समय सैर करने वालों के लिए उपयुक्त स्थान। इन्हीं मार्गों के बीच मंदिर के घंटे की ध्वनियां दिलों को सुकून देतीं। लोगों को रोमांचित करती थी, तो एक पेड़ के नीचे बैठी एक पागल औरत। लोगों को आश्चर्य होता कि आखिर इस सुनसान इलाके में यह पगली अकेले कैसे रहती है? इसे भोजन कैसे प्राप्त होता होगा। ये सारी बातें लोगों के लिए कौतूहल का विषय था।

मैं कई महीनों बाद सुबह की सैर पर निकला था। गंगा की शांत धारा और मंदिरों में बज रही घंटियों की ध्वनि और छटा बिखेरती हरियाली को देखकर मंत्र-मुग्ध होकर चला जा रहा था कि अनायास मेरे कदम एकदम से रुक गये। मैंने देखा वह पागल औरत एक नवजात शिशु को अपने छाती से लगाये स्तनपान करा रही थी, जिस प्रकार एक सामान्य माता अपने बच्चे को लाड़-प्यार करती है, वैसे ही वह भी उस नवजात शिशु से कर रही थी। मैं उस ओर ध्यान से देखने लगा। बिखरे बाल और फटे-पुराने, अधूरे कपड़े के बीच वह अपने तन को ढकने का असफल प्रयास कर रही थी।

मुझे रुका देखकर एक व्यक्ति धीमे स्वर में बोला—''क्या देख रहे हो? मैंने इशारों से पूछा—''ये पागल औरत किसका बच्चा उठा लायी है!'' ''ये किसी और का बच्चा नहीं, बल्कि इसने स्वयं इस बच्चे को जन्म दिया है। न जाने किस वासना के भूखे भेड़िये ने इसके...'' बात को अधूरा छोड़कर उस व्यक्ति ने कहा—''अधिक मत सोचो और बढ़े चलो।'' इतना कह कर वह व्यक्ति आगे बढ़ गया। लेकिन मैं सोचने पर विवश हो गया कि यह शिशु को पोषण करने वाली माँ पागल है या इसे माँ बनाने वाला पागल है।

***

सम्पर्क: विनीता भवन, निकट-बैंक ऑफ इंडिया, काचीचक, सवेरा सिनेमा चौक, बाढ़-803213 (बिहार), मो: 09135014901

दो गजलें

डॉ. पुष्पलता

(1)

शमा के जलने से सूरज नहीं निकलने का
तरीका सीख लो तुम बिजलियों से चलने का
या तो चट्टान बनो अथवा झील से गहरी
ये बारिशों से नहीं रास्ता बदलने का
ढलान बाद में ढलती है साथ पानी के
कसूर पानी का भी तो है उधर ढलने का
हमेशा तुम ही दौड़ती हो रास्तों की तरफ
कभी उनको भी दो अहसास पीछे चलने का
फना ये जिंदगी होती है अगर हो जाये
कोई अफसोस तो होगा नहीं पिघलने का।

(2)

मोती सी आब थी कि जो उतरी उतर गयी
माला की डोर थी कि टूटी बिखर गयी
जब तू रहा न तू तो मैं फिर मैं कहाँ रही
बस एक ख्वाब थी कि जो खुद से मुकर गयी
नजरों से क्या गिरा कि हिया खाक हो गया
वो रूह चांदनी की किसी और घर गयी

***

सम्पर्कः 253/ए, साउथ सिविल लाइंस, मुजफ्फरनगर-251002 (उ.प्र.)

मैंने तो बस इतना जाना

कुसुमवीर

लोलुप्तसा का मन सागर गहरा, सुषुप्त रही आध्यात्म की गीता,
धूल भरी आँधी या यौवन, चट आया और पट था रीता।
तेरी-मेरी करता सब जन, मोह-माया के जाल में फंसता,
इच्छाओं की गठरी भारी, कुंठाओं का आँगन बढ़ता।

पतझड़ में ज्यों पात हैं झड़ते, तैसे ही जीवन का ढलना,
बुद्धि के वृत वातायन से, झाँक रहा अंतर का कोना।
प्रेम सुधा सरसा तू बंदे, साथ न तेरे कुछ भी जाना,
कोई यहाँ पर खड़ा अकेला ढूँढ़ रहा है साथी अपना।

माटी का सब खेल यहाँ पर, माटी जीना, माटी मरना,
सु:ख-संतोष है सबसे बढ़कर, मैंने तो बस इतना जाना।
बूंद रक्त न बहे धरा पर, इंच-इंच टुकड़े की खातिर,
वैर-विद्वेष न उपजे उर में, नेकी का तू बाँट खजाना।

***

सम्पर्कः 253/ए, साउथ सिविल लाइंस, मुजफ्फरनगर-251002 (उ.प्र.)

दो कविताएं

कुलभूषण हस्ती

(1)

मैं अकेला हूँ, न मुझको रास आई जिंदगी
दूर ही मुझसे रही आस भरी जिंदगी।

ऊब गया हूँ कितना मैं हीनता से, होड़ से
हारता आया हमेशा मैं लूट चोरी से, दौड़ से।

साज है, आवाज है, सुनसान लेकिन है जहाँ
दीखता मुझको अंधेरा, रोशनी भी है जहाँ।

साथ चुप्पी, मार मन को अब तक जीता रहा।
आह, आँसू, पीर, दुख मैं आज तक पीता रहा।

बेतहाशा दौड़ती है हर दिशा में जिंदगी।
छूटती ही जा रही है बस मेरी जिंदगी।

***

(2)

मैं आज हूँ।
कल जो चला गया,
सिमट कर सीमित हुआ।

कल जो आयेगा,
असीमित होगा,
अनिश्चित होगा।
परसों वह भी सिमटकर
सीमित बनेगा।
बीते हुए कल,
और आने वाले कल,
दोनों के बीचों बीच मैं हूँ;
मैं आज हूँ, कल नहीं।

***

सम्पर्कः एक-17, शालीमार बाग, दिल्ली-110088, मोः 9810117968

मां की याद

डॉ. सांत्वना श्रीकांत

सुबह की लाली में
दिखता है मां तुम्हारा
दमकता सा चेहरा,
रश्मियों को झाड़ू बना
तुम बुहार देती हो
अब भी मेरा
बिखरा हुआ कमरा।
कई दिनों से सोए-ऊंघते
कंबल-चादर को
झाड़ कर जब मैं
तोड़ती हूं आलस्य की
अपनी सारी रस्सियां
तब मां,
बहुत याद आती हो तुम
इस बे-दिल दिल्ली में,
जहां एक दीवार भी
दूसरी से पराई है।
बनाती हूं चाय
जब होती हूं अकेली,
सोती हूं-
तुम भी मेरी तरह
बना रही होगी दो कप
मीठी चाय,
भोपाल वाले हमारे घर में,

एक अपने लिए ?
दूसरी यूं ही किसी के लिए।
तब याद आती होगी
गुमसुम पापा की भी...।
उस वक्त-
यहाँ हर घूंट में
महसूसती हूं तुम्हें,

सम्पर्क:

निहारती हूं आईने को,
तब तुम्हें ही देखती हूं
खुद में।
सोचती हूं बन जाऊं
तुम्हारी मां एक दिन
और सुलझाऊं
तुम्हारे उलझे केश,
बनाऊं तुम्हारे लिए
कढ़ी-चावल और कुछ
खट्टे-मीठे अचार।
ठीक उसी तरह जैसे
बनाया करती थी तुम
बचपने में कभी मेरे लिए
फिर मन करता है,
सुलाऊं तुम्हें जिद करके
गाते हुए देर तक लोरियां।
सुनती हूं जब
कि-
आया है तुम्हें बुखार
या बढ़ गई है बीपी,
तब नींद में ही
चल देती हूं यहाँ से,
खड़ी रहती हूं थर्मामीटर लिए
तुम्हारे सिरहाने रात भर।
तकिए के नीचे
छुपा देती हूं
अपनी सारी खुशियां,
ठीक वैसे ही जैसे
तुम किया करती थी
कभी-कभी मेरे लिए।
सुन रही हो मां-
बहुत याद आती हो तुम
इस बेदर्द दिल्ली में,

जब मुस्कुराती है धूप।
सोचती हूं कि
तुम छत पर बैठी
गुनगुना रही होगी
मेरी विजय का गीत।
तब मैं भी कर रही
होती हूं एक घमासान
संशय में लिपटी रातों से।
आंसुओं के सैलाब में
डूबने नहीं देती
सपनों का वह जहाज,
जो कभी-कभी तैरता है
तुम्हारी आंखों में भी।
और जब
ढलते हुए सूरज की लाली में
जलाती हो उम्मीदों का दीप
मेरे लिए, तो
मैं वहीं कहीं होती हूं,
बुहार रही होती हूं
सारी बलाएं,
तुम्हारी सुखद नींद के लिए।
तुम्हारी मुस्कान से
बटोर रही होती हूं शक्ति
एक-एक पग
बढ़ने के लिए आगे,
जैसे-
तुम्हारी ऊंगली पकड़ कर
कभी चली थी मैं
पहली बार।
सुनो न मां,
बहुत याद आती हो तुम
इस बे-दिल दिल्ली में...।

***

मैं पिता हो जाना चाहता हूं

संजय स्वतंत्र

तुम्हारे लिए अब
पिता हो जाना चाहता हूं,
जिसकी अंगुलियां पकड़
चल सको कहीं भी
और मैं—
थपथपा सकूं तुम्हारी पीठ
बढ़ा सकूं तुम्हारा हौसला।
मिलूं किसी चौराहे पर
तो पकड़ कर मेरा हाथ
ले जा सको अपने घर,
और मुझसे मिला सको
गर्व से अपनी आंखें।
हां... पिता बनना चाहता हूं,
जिससे तुम जब चाहो
कर सको भोली-सी जिद
किसी खिलौने की दुकान
के सामने रुक कर
प्यारी-सी गुड़िया खरीदने की।
जब कभी तुम्हारी पीठ
या कंधे पर धर दूं हाथ
तो समझ लेना कि
मैं पिता हो गया हूं।
वक्त के थपेड़ों से
रुखे हो गए गालों पर
फेरूं कभी हथेलियां
या फिर लोक लूं
ढलकते तुम्हारे आंसुओं को,
उस पल भी देख सकती हो
अपने पिता को जो
अनंत यात्रा के बाद
चले आए हैं तुमसे मिलने।
वे नहीं देखना चाहते।
तुम्हारी कभी भी पराजय।
मैं चाहता हूं कि
किसी स्टेशनरी की दुकान पर
ले जाऊं तुम्हें और
दिलाऊं रंग-बिरंगी पेंसिलें,
जिससे सजा सको तुम
अपने लिए सात रंग के सपने,
उन एक सपने में आऊं
पिता की तरह दबे पांव।
दिलाऊं तुम्हें एक इरेजर भी
जिससे मिटा सको तुम
राह की सभी बाधाएं
क्योंकि देखना चाहता हूं
तुम्हें बढ़ते हुए निर्बाध।
मैं तुम्हारे लिए
बन जाना चाहता हूं मां,
जिसके गले लगकर
साझा कर सको सभी दुख,
पा सको थोड़ा-सा दुलार,
बहा सको वह नदी,
जो तुम्हारे मन के
किसी कोने में
बहती रहती है।
जैसे मां देती है
बांध कर मिठाई
ठीक वैसे ही-
मैं देना चाहता हूं सौगात
तुम्हें हर सफर में।
मैं प्रेमी हूं न मित्र,
बनना चाहता हूं सखा
क्योंकि मित्र साथ रहे
यह जरूरी नहीं,
पर मन की यात्रा पर
सखा हमेशा संग चलता है,
ठोकर खाकर न गिरे
इसलिए पकड़े रहता है हाथ।
सच कहूं तो तुम्हारे प्रेम में
जीता हूं कई रूप।

सम्पर्क:

***

निशांत की दो कविताएं

समुद्र के सामने जाने पर

समुद्र के पास पहुंचकर पता चला
कितना?
कितना बड़ा है आसमान।

कितना बड़ा?
कितना बड़ा है समुद्र

और
कितने?
कितने छोटे हैं हम
घर के एक पानी के नल से भी छोटे

सच्चाई क्या है?
किसे सच माने बैठे हैं हम।
पानी के लिए
चपरासी पर हुक्म चलाते हुए

समुद्र के सामने जाने पर
चपरासी के सामने
शर्म से झुक जाता है मेरा सर

दुआ

मैं सभी बच्चों के साथ रहना चाहता था
फेल तो नहीं सिर्फ पास होना चाहता था
पर अव्वल आता रहा
मेरी अव्वलता मुझे दोस्तों से दूर ले गई।
नजरों में भी।

मैं सीधा-साधा पढ़ने-लिखने वाला लड़का
प्रेम नहीं करना चाहता था

सम्पर्कः द्वारा मेडिसिन सेंटर, बुदबुद बाजार, पो.-बुदबुद, जिला-बर्द्धमान, पिन-713403 (प.ब.), मो:09239612662

पहले प्रेम और प्रेमपत्र को प्राप्ति ने
दूसरी दुनिया के दरवाजे खोले मेरे लिए
तो एक बार और मैं दोस्तों की नजरों में उठा।
और थोड़ा ऊपर
फिर और दूर चला गया
लड़की दूसरे जात की थी

कई सालों तक
रात-रात भर सड़कें टापता रहा
नये दोस्त बनाता रहा
कट चाय से लेकर बीड़ी तक शेयर करता रहा
नौकरी के लिए धक्के खाता रहा।

नौकरी भी छोटी-मोटी करना चाहता था
पर दुर्भाग्य या सौभाग्य से विश्वविद्यालय से जा लगा
थोड़ी बड़ी नौकरी भी विभाजक बनी
मेरे और दोस्तों के बीच
इस उम्र में

तीन-तीन बार जीवन में दोस्त बदला
अब उम्र हो गई है
शरीर से ज्यादा मन बूढ़ा हो गया है
फजिर की नमाज पढ़ते हुए
खुदा से दुआ करता हूँ-
ऐ खुदा! दोस्त सारे अव्वल आएं।
खूब प्रेम करें
सारी अच्छी नौकरियाँ पाएं! और
दोस्त, दोस्त ही बने रहें!
समय के साथ
न बदले दोस्त की परिभाषा!

अब
और
कुछ नहीं चाहिए
तेरी रहमत से।

***

बैंक का पासवर्ड

श्रीकांत चौधरी

घर-परिवार तथा शहर के इष्ट मित्रों ने मुझे बधाइयाँ दीं। आस-पड़ोस के लोगों को मैंने मिठाई भी खिलाई, लेकिन बुरे दिन फिर आ गये, दूसरे दिन पासवर्ड फिर अक्षम हो गया। आज तक है, यह भी एक दैवी घटना ही होगी।

सम्पर्कः पूर्व सिविल जज-1, नया बाजार नं. 1, दमोह-470661 (म.प्र.)

सदियों में कभी-कभार, जल-थल-नभ में कुछ ऐसी घटनाएं होती हैं जो मनुष्य के लिए अबूझ पहेली बन जाती हैं। संसार के वैज्ञानिक, चिंतक, दार्शनिक, विशेषज्ञ भी इन घटनाओं का रहस्य उजागर नहीं कर सके! इन्हें दैवी चमत्कार ही समझा गया! विचित्र किंतु सत्य!

अपने जीवन की ऐसी विचित्र चमत्कारिक अद्‌भुत घटना का उल्लेख कर रहा हूँ-

घटना नं. 1—एक समय की बात है जब मैंने अपना खाता खोला और इंटरनेट बैंकिंग का उपयोग आरंभ किया। हर महीने एक या दो बार मैं पासवर्ड डालकर लाग-इन कर अपना एकाउंट चैक करता था। एक दिन मैंने अपना खाता (बैंक बैलेंस) जानने के लिए पासवर्ड डाला। लाग-इन नहीं हुआ फिर चेतावनी आ गई, तीसरी बार में यूजर आई.डी. अक्षम (डिस्एबल) कर दी जायेगी और अंततः वह अक्षम कर दी गई। इसके पश्चात मैंने बैंक के सलाहकार से मुफ्त फोन नं. 1800222244 पर संपर्क किया। उन्होंने मेरी पहचान की पुष्टि के बाद दो घंटे बाद मेरा खाता पासवर्ड पुनः चालू (एक्टिव) हो जाने का भरोसा दिलाया।

मैंने चार घंटे बाद अपना नेट-अकाउंट खोलना चाहा पर नहीं खुला, मैंने पुनः बैंक से संपर्क किया, उनके बताये अनुसार सारी जानकारियाँ पुनः भरी, रीसेट-पासवर्ड किया, नहीं हुआ। पुनः संपर्क किया पुनः उनके बताये अनुसार नया पासवर्ड तय करने की प्रक्रिया की, सारा डाटा, जानकारी मेरी नोटबुक में थी, चार नेट बैंकिंग एक्सपर्ट भी जो मेरे मित्र थे, मेरी सहायता कर रहे थे पर लाग-इन नहीं हुआ। मैंने मंदिर जाकर पूजा की, हवन कराया, 24 घंटे का बिना लाउडस्पीकर के भजन-कीर्तन भी घर के अंदर कराया, पर मेरा पासवर्ड रीसेट नहीं हुआ, पासवर्ड पर भगवान का भी वश नहीं होता, सब व्यर्थ गया। सारी प्रविष्टियाँ सही होने के बावजूद।

कर्म किये, फल की चिंता नहीं की, क्योंकि सब निष्फल ही था।

दस दिन बाद बैंक अधिकारी से भी संपर्क किया तो उनका यही जवाब था "सिस्टम में या आपमें ही कुछ गड़बड़ी होगी।" दो माह बाद थक हार कर मैंने सोमनाथ मंदिर पर हमला कर लूटपाट करने वाले मोहम्मद गजनवी के प्रयासों को याद किया, एक कोशिश और की। यह 250वीं कोशिश थी। बैंक अकाउंट लाग-इन हो

गया, पासवर्ड एक्टीवेट/लागू हो गया था, खाता खुल गया, मैंने अकाउंट देखा, पैसा जमा 15 हजार 15 रुपये ज्यों के त्यों थे। यह एक दैवी चमत्कार था, मैंने बैंक को फोन लगाकर पूछा कि यह सब कैसे हो गया? क्या उनके सिस्टम में कोई परिवर्तन, सुधार हुआ है? तो उनका साफ उत्तर था कि **''उन्होंने कुछ नहीं किया और इन सब में उनका कोई हाथ नहीं है। किसी विदेशी ताकत का हाथ हो तो वे नहीं जानते। वे इस घटना के लिए उत्तरदायी नहीं है।''** निश्चय ही यह दैवी चमत्कार या कोई अनहोनी घटना थी। घर-परिवार तथा शहर के इष्ट मित्रों ने मुझे बधाइयाँ दीं। आस-पड़ोस के लोगों को मैंने मिठाई भी खिलाई, लेकिन बुरे दिन फिर आ गये, दूसरे दिन पासवर्ड फिर अक्षम हो गया। आज तक है, यह भी एक दैवी घटना ही होगी।

घटना नं. 2—इंटरनेट सर्विस

लगभग सन् 2025 की घटना है। मेरा भतीजा मल्टीनेशनल कंपनी में नौकरी करता था, घर के एक कमरे को उसने ऑफिस में तब्दील कर दिया जहाँ पांच-सात लैपटाप रखे थे जिनमें उसने 6 जी सुपर स्पीड ब्राडबैंड कनेक्शन ले रखे थे। वह कमरे में अपने कार्य में व्यस्त था और मैं बगल के कमरे में ही अखबार पढ़ने में व्यस्त था। किसी के धम से गिरने की आवाज आई, मैं अखबार फेंक भतीजे के कमरे की तरफ दौड़ा तो वह जमीन पर औंधे मुंह गिरा पड़ा था, मैंने उसे उठाया, सोफे पर लिटाया, पानी के छींटे मारे, वह चैतन्य हो गया। मैंने पूछा—''आखिर क्या हुआ? तबियत तो ठीक है न।''

वह सरल भाव से बोला—''मैं बिल्कुल ठीक हूँ। दरअसल अभी मैं दो घंटे से इंटरनेट चला रहा था, छहों कनेक्शनों की स्पीड न केवल हाई स्पीड चल रही थी वरन् लगातार भी चल रही, नो ब्रेक। फिर मैंने बंद करके दोबारा चैक किया सभी की हाई स्पीड लगातार बनी हुई है, नो ब्रेक। वो भी दो घंटे से। इसीलिए मुझे चक्कर आ गया।'' मुझे भतीजे की बात पर विश्वास नहीं हुआ, मैंने स्वयं प्रत्येक कंपनी का नेट चलाकर देखा, भतीजे की बात सही थी। सबकी नेट स्पीड निरंतर और बहुत तेज थी, अब मुझे चक्कर आने को था, भतीजे ने मुझे सम्हाल लिया, स्वस्थ महसूस करने पर मैंने इंटरनेट प्रदाता कंपनीज को इसका कारण पूछा तो उन्होंने बड़ा आश्चर्य व्यक्त करते हुए यही कहा कि इसमें कोई गलती नहीं है, कभी-कभार इंटरनेट अत्यंत तीव्र गति और निरंतरता से चल जाता है, टैक्नीकल मिस्टेक होगी। कभी-कभी वे खुद हैरत में पड़ जाते हैं और आसमान की ओर देखते है। ''कुदरत के खेल निराले हैं भैया''। उन्होंने कहा, मैंने मान लिया, रहस्य फिर भी रहस्य ही रहा।

***

लघुकथा

एक बाल्टी का व्यवहार

सत्य शुचि

शादी के बाद एक पहली मर्तबा वह दफ्तर में बगैर नहाएँ सीट पर था। दरअसल, ससुराल से कुछ सगे-संबंधी उसके यहाँ अचानक आ टपकें। सो, रिश्तेदारों के नहाने-धोने में घर का सारा पानी खलास हो गया था। तिस पे वह निर्वाक रहा। कदाचित् पत्नी बहुत तरह खफा थी और तत्काल उसने मायके में खुद मम्मी को फोन खड़खड़ाया था।

''...हाँ, बेटा!'' मम्मी के स्वर में एक गहरी नाराजगी छितर आई, ''तुम्हारे जीजाजी-जीजी कहीं भी आएँ-जाएँ तो सब तो ठीक है। मगर वह अपने साथ सात-सात जजों को लिए तुम्हारे घर कदम धरे, ऐसा उन्होंने अच्छा नहीं किया है... आखिर, तुम्हारा घर कोई होटल-सराय तो नहीं था।''

''हाँ... बिल्कुल सही, मम्मी!'' विनीता का लहजा उखड़ा हुआ था, ''हालांकि मेरे घर पर उन्होंने चाय तक नहीं पी थी बल्कि वो एक आम की पेटी, सेब की पेटी, बच्चों को सौ-सौ रूपये और तुम्हारे जमाई सा को पाँच सौ रूपये देकर ही गए थे... खाली हाथ नहीं थे उनके''

''फिर भी, रोना तो इस बात का है कि तुझे अपनी पूरी गली से एक बाल्टी पानी जमाई सा के नहाने के वास्ते नहीं मिला...। यह आज के टाइम कितनी बड़ी अद्भुत घटना-दुर्घटना है।''

''हाँ, मम्मीजी... एक बाल्टी पानी के कारण मुझे परिवार में काफी शर्मिन्दगी महसूस हुई... और अभी मैं फोन रख रही हूँ, मम्मी!... ससुरजी, इधर को ही आ रहे है।''

''अच्छा, बेटा...! मैं अब इन रिश्तेदारों की जल्द ही खबर लेती हूँ... तुम ज्यादा सोच-फिकर मत करना, समझी।

***

सम्पर्क: साकेत नगर, ब्यावर-305901, (राजस्थान), मो: 09413685820

जलवायु परिवर्तन

अनुराग वाजपेयी

हम विदेशी बैंकों में पैसा रखते हैं इसका मतलब ये नहीं हैं कि जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर उनकी धौंस में आ जायेंगे। हमारी अपनी प्राथमिकताएं हैं। मैंने कहा-बिल्कुल, ठीक साहब, यही अपने देश और चीन का कहना है कि विकसित देशों का दबाव नहीं मानेंगे। वे बोले-चीन को बीच में क्यों लाते हो, वहाँ तो लोकतंत्र ही नहीं है। जलवायु परिवर्तन तो हमारे यहाँ का विषय है, युवा नेतृत्व को आगे लाना ही चाहिए तभी पार्टी की सेहत सुधरेगी। मैंने बात को फिर सिरे पर लाने की कोशिश की।

सम्पर्कः 1बीएफ4, सतलज अपार्टमेंट, सेक्टर-2, विद्याधर नगर, जयपुर-302039, मो: 9462021663

आजकल जलवायु परिवर्तन की बड़ी चर्चा चल रही है। सर्दी में सर्दी नहीं पड़ रही, बरसात में बरसात नहीं हो रही और गर्मी है कि बढ़ती ही चली जा रही है। वैज्ञानिक चिंतित हैं। बड़े-बड़े देश परेशान हैं कॉलेजों में इस मुद्दे पर सेमीनार हो रहे हैं, एन.जी.ओ. वाले रैलियां निकाल रहे हैं। भविष्य संकट में है। मैंने अखबार पढ़कर गंभीर होते हुए इस मुद्दे पर अपनी चिंता से स्थानीय विधायक को अवगत कराने की सोची। वे सुबह के वक्त घर के बाहर नीम की दातुन से दांत घिस रहे थे और सरकारी कर्मचारियों से तबादलों की दरख्वासे ले रहे थे, यानी जनसमस्याएं सुन रहे थे।

मैंने विधायक के रूप में लोकतंत्र के इस अवतार को प्रणाम किया। वे बोले-आओ, आओ, अबकी बड़े दिनों बाद आए, पत्नी का ट्रांसफर हो गया क्या? कैंसिल करवाना है, मैंने मन ही मन उनकी सहृदयता से भीगते हुए कहा-नहीं साहब, मैं तो जलवायु परिवर्तन पर बात करने आया था। वे बोले-हां, हां सो तो हो ही रहा है, सर्दियां जा रही हैं अब गर्मी शुरू होगी। मौसम तो बदलता ही रहता है इसमें बात करने वाली बात क्या है, आप सीधे-सीधे खुलकर बताइये, सब अपने ही लोग हैं। वे बात को काटते हुए बोले-अरे संकोच क्या है, अरे भाई आप लोग थोड़ा उधर, बाहर बरामदे में चाय-वाय पीजिए, आस-पास के लोगों को हटा कर वे मेरे पास आ कर बोले-अब बताइये क्या बात है? आपको किसी दुश्मन का तबादला करवाना लगता है, मुझे बताइये ससुरे को बिना ट्रांसफर सीधा कर दूंगा। मैंने कहा-अरे नहीं साहब, ऐसा कुछ नहीं है, मैं तो वह जलवायु परिवर्तन की बात करने आया था, सारे देश इससे चिंतित हैं कि धरती पर गर्मी बढ़ रही है। विधायक जी ने आवाज लगाई-अरे, आप सब लोग भीतर ही आ जाइये, फिर मेरी तरफ मुंह करके बोले हाँ बताइये, क्या मामला है? मैंने कहा-साहब पूरी दुनिया में जलवायु बदल रही है, गर्मी बढ़ रही है। वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड के बढ़ने से खतरा बढ़ गया है। वे बोले-सो तो है, हम भी महसूस कर रहे हैं, गर्मी बढ़ रही है। हमारी पार्टी में ही दो गुट बन गए

हैं एक मुख्यमंत्री का, एक पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष का, गर्मागर्मी होती रहती है। सब चलता है।

मैंने कहा-साहब, मैं वातावरण की गर्मी की बात कर रहा हूं। वे बोले-मैं भी उसी की बात कर रहा हूं हमारी तो पार्टी ही हमारा वातावरण है। मैंने कहा-साहब, ये जो ए.सी. चलते हैं, गाड़ियों का धुआं निकलता है इससे खतरनाक गैसें निकलती हैं। विधायक जी बोले-लाल बत्ती वाली गाड़ी कोई प्रदूषण नहीं करती उसका आज तक चालान नहीं कटा, ऐसा होना चाहिये कि सारी गाड़ियों पर लाल बत्तियां लगा देनी चाहिये ताकि प्रदूषण हो ही नहीं। मैंने कहा-साहब, आपको भी इस मुद्दे पर अपनी चिंता जाहिर करनी चाहिये। वे बोले-देखो, जलवायु परिवर्तन हमारी पार्टी का अंदरूनी मामला है इस पर मैं सार्वजनिक रूप से कोई टिप्पणी नहीं करूंगा। हमारा रिकार्ड रहा है, हम अंदरूनी बातों को अंदर ही अंदर निपटाते हैं। मैंने टोका-पर साहब, जलवायु परिवर्तन आपकी पार्टी का मसला कैसे हो गया। वे बोले-और क्या? अरे भाई पुरानी पीढ़ी के नेताओं को किनारे किया जा रहा है, युवा नेतृत्व विकसित किया जा रहा है इससे पार्टी का हवा-पानी बदलेगा, इसी जलवायु परिवर्तन से तो सैंकड़ों लोग परेशान हैं कि मंत्री पद विरासत में अपने नकारा बेटों को कैसे दे पायेंगे? मैंने टोका-विधायक जी, मैं जिस जलवायु परिवर्तन की बात कर रहा हूं उससे अमेरिका, ब्रिटेन और तमाम देश चिंतित हैं, कोपनहेगन में सम्मेलन कर रहे हैं। विधायक जी बोले-करने दो सम्मेलन, हम पहले भी कह चुके है कि पार्टी के मामलों में विदेशी हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं करेंगे। हम विदेशी बैंकों में पैसा रखते हैं इसका मतलब ये नहीं हैं कि जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर उनकी धौंस में आ जायेंगे। हमारी अपनी प्राथमिकताएं हैं। मैंने कहा-बिल्कुल, ठीक साहब, यही अपने देश और चीन का कहना है कि विकसित देशों का दबाव नहीं मानेंगे। वे बोले-चीन को बीच में क्यों लाते हो, वहाँ तो लोकतंत्र ही नहीं है। जलवायु परिवर्तन तो हमारे यहाँ का विषय है, युवा नेतृत्व को आगे लाना ही चाहिए तभी पार्टी की सेहत सुधरेगी। मैंने बात को फिर सिरे पर लाने की कोशिश की। मैंने कहा-साहब पार्टी के आगे भी देखिए, जलवायु सारी दुनिया में बदल रही है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं, ग्रीन हाउस गैसें बढ़ रही हैं और भी न जाने क्या-क्या बदलाव आ रहे हैं। विधायक जी थोड़े गंभीर हुए, बोले-देखिये मैंने भी अखबारो में पढ़ा है कि ग्लेशियर पिघल रहे हैं पर सोचो, यह तो अच्छा ही होगा इससे नदियों में पानी बढ़ेगा, सिंचाई होगी, खाद्यान्न उत्पादन बढ़ेगा, तो भैया जैसे पार्टी में बदलाव अच्छा होता है वैसे ही जलवायु में भी परिवर्तन होते रहना चाहिए। बुजुर्गों ने भी कहा है, बीमारी भी आबोहवा बदलने से दूर हो जाती है। होने दो ना परिवर्तन। मैंने कहा-पर साहब ग्लेशियर पिघल गए तो प्रकृति में असंतुलन हो जायेगा। वे बोले-कुछ नहीं होता, वक्त सब घाव भर देता है, हमारी पार्टी में पहले एक राष्ट्रीय अध्यक्ष थे, ग्लेशियर जितने ही विशाल, अचानक पिघल गए, तो क्या पार्टी टूट गई? कुछ नहीं हुआ। ग्लेशियर की जगह अब गड्ढों से काम चला रहे हैं।

मैंने अब आखिरी दांव खेला-साहब, मान लीजिए, आप अगले मंत्री बन गए और आपको जलवायु परिवर्तन पर किसी सम्मेलन के लिए विदेश जाना पड़ा तो आप वहाँ भी पार्टी की जलवायु की बात करेंगे? वे मुस्कुराये, बोले-मुझे मूर्ख समझते हैं। जो मैं वहाँ पार्टी की बात करूंगा, मैं राष्ट्रीय समस्याओं को अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाने का पक्षधर ही नहीं हूं। तो आप वहाँ क्या करेंगे, मैंने कहा। वे बोले-आप से यही ग्लेशियर, ग्रीन हाउस गैस, कार्बन वगैरह का भाषण लिखवा कर ले जाऊंगा। आप मना थोड़े ही कर देंगे। मैं वहाँ भाषण दूंगा, तालियां बटोरूंगा, शाम को घूमूंगा और ढेर सारी शॉपिंग करूंगा। वे बोलते रहे और ख्यालों में विदेश पहुंच गए। मैं लौट आया, इस भरोसे के साथ कि देश में इतने विद्वान नेताओं के होते जलवायु परिवर्तन अपना कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

***

कहाँ गये वे लोग

पूरन सरमा

साहित्य का क्रेज ऐसा बढ़ा कि अच्छे-अच्छे नव धनाढ्यों के लड़के-लड़की बिगड़ गये तथा यह 'शगल' अपनाने लगे। लड़के माँ-बाप के लिए कपूत बन गये थे तो लड़कियाँ चरित्र की दृष्टि से संदिग्ध मानी जाने लगीं। असली साहित्यकारों में एक लड़की को पाने की होड़ मचा करती थी। क्योंकि लड़कियाँ बहुत कम आया करती थीं उन दिनों इस क्षेत्र में। ऊपर से भोले-भाले दिखायी देने वाले ये लोग बहुत ही बर्बर हुआ करते थे।

साहित्य में जो लोग घर फूँक कर तमाशा देखा करते थे, पता नहीं आज वे लोग कहाँ गये। दरअसल वे असली साहित्कार लोग थे। नाक-नक्शे में तो ये लोग हमारी ही तरह थे, परंतु इनकी मुद्रा गंभीर तथा स्वभाव के ये चिड़चिड़े हुआ करते थे। ये लोग थे तो लेखक ही परंतु लिखते कम और बोलते ज्यादा थे। लिखने के बाद ये लोग अपनी रचनाओं को बाँधकर सोने के पलंग के नीचे रख देते थे। प्रकाशन के लिए उन दिनों लघु पत्रिकाएँ निकला करती थीं। घर के जेवर या वेतन से वे इन पत्रिकाओं का अनियतकालिक प्रकाशन जारी रखते थे। इनमें उनके ही जैसे खुरदुरे और चिड़चिड़े लोगों की रचनाओं का प्रकाशन हुआ करता था। ये लोग अपने को साहित्य का नियंता व नियामक माना करते थे, साहित्य की नींव इन्हीं पर टिकी हुई थी। वे बड़ी व्यावहारिक पत्रिकाओं में लिखने वाले लेखकों को व्यावसायिक माना करते थे तथा उन्हें हेय दृष्टि से देखा करते थे।

जो लोग साहित्यिक लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन किया करते थे, वे संपादक व साहित्यकार दोनों हुआ करते थे। वे सेठों से चंदा भी अपने पत्रों को चलाने के लिये लिया करते थे। सेठ उन्हें निरीह, असहाय तथा गिरा हुआ समझकर दयाभाव से विज्ञापन रूप में कुछ आर्थिक सहयोग देकर उपकृत कर दिया करते थे। ये अपने लेखन में पूँजीपतियों की धज्जियाँ उड़ाते तथा सर्वहारा के संघर्ष की बात पर जोर देते थे। इसलिए ये लोग जुझारू रूप में भी जाने गये। सेठ यह जानते हुए भी कि इन लघु-पत्रिकाओं के प्रकाशक उन्हें गालियाँ देते हैं, उसके बाद भी अपना सहयोग जारी रखते थे। वह इसलिए कि ये पत्रिकाएँ केवल कुछ सौ की संख्या में हुआ करती थीं तथा उन्हीं के बहुत छोटे दायरे में मात्र असली साहित्यकारों में पढ़ी जाती थीं। आम आदमी तक उनकी पहुँच नहीं थी और यदि वह साहित्य आम आदमी तक पहुँच भी जाता था, तो वह समझ नहीं पाता था। अत: उसकी उपादेयता मात्र लेखक समुदाय के मध्य ही मानी जाती थी। व्यावसायिक लेखक इन पत्रिकाओं को देखकर उस समय हँसा करते थे। उन्हें हँसता देखकर वे लोग दाँत पीसते थे तथा वे उनके कोप के भाजन हो जाया करते थे। वे उनके खिलाफ अपनी लघु-पत्रिकाओं में संपादकीय लिखते तथा व्यावसायिक एवं साहित्यिक लेखन की बाँट बनाये रखते थे। इससे उनका एक वर्ग व ग्रुप भी बना रहता था।

सम्पर्क: 124/61-62, अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-302020,
मो:9828024500

वे लोग धुन के पक्के तथा इरादों को साकार करने वाले थे। उनके घरों में चाहे खाद्यान्न का संकट हो या बच्चों की हालत विपन्न हो, परंतु वे लोग साहित्य के लिये मर मिटा करते थे। उनमें से कुछ लोग ऐसे भी थे जो कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में अध्यापन का कार्य करते थे, ये लोग दोहरा लाभ कमाने में कामयाब रहे। प्राध्यापक, लेखक वर्ग वाला लेखक खस्ताहाल संपादकों को चढ़ाये रखता था तथा जीवन संघर्ष में उन्हें कठिनाई का अनुभव भी नहीं होता था। ये लोग चतुर व घाघ थे। संपादकों को उल्लू बनाकर अपनी चर्चा करवाना तथा अपना ही साहित्यिक आकलन कराते रहना, ये उनके चतुरतापूर्ण कार्य थे। निरीह व विपन्न संपादक इनके जाल में उलझा रहकर अपने घर को बरबादी के कगार पर पहुँचाकर भी अपने लघु पत्र का अनियतकालिक प्रकाशन बनाये रखता था। अनेक संपादकों ने अपने भरे-भराये घर को साहित्य के चक्कर में खाली किया, यहाँ तक कि उन्होंने अपने घर की सारी व्यवस्था को छिन्न-भिन्न भी कर लिया था। उनके घरों में चूल्हे नहीं जल पाते थे तथा वे लोग इसे साहित्य का संघर्ष मानकर चलाते रहते थे। अनेक संपादकों के इस संघर्ष में पत्नियों से तलाक हुए, तो अनेक अन्य लेखिकाओं के चक्कर में आकर के पत्नी के अलावा प्रेमिकाओं की आवश्यकता महसूस करके उनके दायित्व निर्वाह में लगे रहकर अपनी शांति का परित्याग कर बैठे थे। जीवन संघर्ष तथा सर्वहारा की दलील देने वाले थे असली साहित्यकार-संपादक साहित्य के मोर्चे पर सफल भले रहे, परंतु औरत और शराब इनकी कमजोरी हुआ करती थी। इसके लिये ये कुछ भी कर सकते थे। दाम्पत्य जीवन तो इनका लगभग समाप्तप्राय-सा ही था।

इनकी दिनचर्या गप्प गोष्ठियों के आयोजन, कॉफी हाऊसों में प्रात:काल से सायंकाल तक डटे रहना एवं एक अनावश्यक गंभीरता चेहरे पर ओढ़े रहने में बीत जाया करती थी। हँसना इनके लिए मना था तथा सदैव एक अनजाने तनाव से घिरे रहते थे। जीवन में जितनी भी बेतरतीबी ये ला सकते थे, लाने का प्रयास करते थे। नहाना-धोना इनके लिए जरूरी नहीं था। बच्चों का लालन-पालन कौन-कैसे कर रहा है, इससे भी ये अनभिज्ञ रहा करते थे। इस जमाने के कुछ लेखकों ने दाढ़ी भी बढ़ाई तथा बगल में थैले भी लटकाये और साथ ही साथ अपनी दरिद्रता बढ़ाने में ये लोग लगातार सचेष्ट रहे थे। इस चक्कर में अनेक साहित्यकार अपने आपको नहीं भी संभाल पाये तथा वे लोग पागल होकर सड़कों पर भटकने भी लगे। समाज में इनकी इज्जत थी-सरकार इनको इज्जत-आदर बख्शती थी, राजनेता इन्हें माला पहनाकर अपने को धन्य समझते थे। केवल इसलिए कि इनका ध्यान उनकी कमजोरियों की ओर न जाये तथा ये अपनी ऊल-जलूल हरकतों में ही लगे रहें। इस प्रकार उन दिनों एक पूरी की पूरी पीढ़ी खराब हो गई थी। व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में एक ऐसी लहर चल पड़ी थी कि साहित्य, साहित्यकारों पर सवार होकर उन्हें पागल कर चुका था तथा सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते हर समय उन्हें साहित्य की हाजत लगी रहती थी। अब तो हालत खैर उलटे हैं, साहित्यकार साहित्य पर सवार होकर उसे आय का जरिया बना चुका है। उस समय यदि साहित्य से पाँच रुपये की भी आय हो गई तो साहित्य का दर्जा गिर जाया करता था।

साहित्य का क्रेज ऐसा बढ़ा कि अच्छे-अच्छे नव धनाढ्यों के लड़के-लड़की बिगड़ गये तथा यह 'शगल' अपनाने लगे। लड़के माँ-बाप के लिए कपूत बन गये थे तो लड़कियाँ चरित्र की दृष्टि से संदिग्ध मानी जाने लगीं। असली साहित्यकारों में एक लड़की को पाने की होड़ मचा करती थी। क्योंकि लड़कियाँ बहुत कम आया करती थीं उन दिनों इस क्षेत्र में। ऊपर से भोले-भाले दिखायी देने वाले ये लोग बहुत ही बर्बर हुआ करते थे। सामान्य रूप से ये लोग प्रेसों के चक्कर लगाया करते थे तथा पत्रिकाओं के प्रूफ पढ़-पढ़कर चश्मे का नंबर बढ़ाते रहते थे। ये लोग अंक आउट करने की फिक्र में रहते थे। उन पर चर्चा, विमोचन तथा गोष्ठी करना आम बातें थीं। इस जमाने के लेखकों को भूखों मरने का अच्छा अभ्यास था तथा सदैव प्रयास करते थे कि उनकी माली हालत कहीं सुधर न जाये।

आज वे नहीं है, उनकी स्मृतियाँ हैं। उनकी नस्ल का नामोनिशान तक नहीं हैं, परंतु वे लोग जो कर गये उनके भग्नावशेष आज भी यत्र-तत्र मिल ही जाते हैं। उनमें से ज्यादातर या तो लेखन से नाता तोड़कर तेल-नोन-लड़की की चिंता में जुट गये या फिर व्यावसायिक लेखकों की जमात में आ जुड़े अथवा ये लोग लुप्तप्राय हो गये हैं। यह नस्ल ही लगभग नष्ट हो चुकी है। उनकी जगह बहुत ही सतही व्यावसायिक लेखकों ने ले ली है। अब उनमें जो व्यावसायिक बन गये हैं—वे असली साहित्य की चर्चा भी नहीं करते। गोष्ठी, विमोचन तथा चर्चा जैसे शब्द गायब हो गये हैं। वह वजनी व गंभीर मुद्रायें मिट गई हैं-उसकी एवज सैक्स, क्राइम तथा सामायिक लेखन ने ले ली है। अब साहित्यकार, साहित्य नहीं रचते, अब वे कलैंडर को देखकर ही लिखने लगे हैं। मौसम को देखकर लेखन करते हैं कि वे लोग गये कहाँ? क्यों नहीं निकलतीं अब लघु अव्यावसायिक पत्रिकायें? क्यों नहीं लिखते लोग गरिष्ठ साहित्य? शायद इसलिए कि वे लोग ही नहीं रहे तो अब कौन करे वैसा काम। अब लेखन घर फूँककर तमाशा देखने का माध्यम नहीं अपितु घर को सँवारने का माध्यम बनता जा रहा है।

अब लोग गोष्ठियाँ नहीं करते, गंभीर मुद्रायें नहीं बनाते, यानी कि तमाम के तमाम असली साहित्यकारों के लक्षण समाप्त हो गये हैं।

साहित्य की हानि हुई है या लाभ, यह तो भविष्य के गर्भ में है, परंतु एक लाभ जो हुआ है, वह है परिवारों में बिखराव, जो साहित्य के कारण होना कम हुआ है तथा इसका पागलपन लगभग समाप्त हो गया है, एवं घर-गृहस्थी में भी रुचि लेने लगे हैं। लोग साहित्यकारों को मान-सम्मान दें या नहीं दे सकते, ये लोग आजकल होश में रहते हैं। महिलायें भी अब साहित्यकारों से प्रेम-व्रेम नहीं करती हैं। साहित्यकारों की बेतरतीबी घट गई है तथा वे आम आदमी जैसा जीवन जीने को सचेष्ट हुए हैं। साहित्य में असली-नकली का भेद समाप्त हुआ है तथा यह शुद्ध रूप से व्यावसायिक रूप ले चुका है, इससे भी साहित्यकारों की माली हालत में सुधार हुआ है, परंतु यह अवश्य है कि वे लोग नहीं रहे-जो अपने को तबाह कर लेते-पता नहीं वह नस्ल कहाँ गई? आपको ऐसे एक जीव का पता चले तो मुझे बताना, मैं धरती से समाप्त हुए ऐसे डायनासोर को देखना चाहता हूँ, क्योंकि मैं जब लेखन में आया, तब तक यह नस्ल समाप्त हो गई थी-इसलिए कोई मिले तो बताना।

***

मॉरीशस में आर्य महिला मंडल द्वारा आयोजन

9 सितंबर 2018 को डी.ए.वी. कॉलेज, रोज बेल में एक हिंदी सम्मेलन का भव्य आयोजन किया था-'**हिंदी तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में नारी की भूमिका**'। समारोह के मुख्य अतिथि विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव प्रो. विनोद कुमार मिश्र थे। सम्मेलन दो भागों में विभाजित था। प्रथम भाग सांस्कृतिक कार्यक्रम का रहा। इसका शुभारंभ प्रज्ज्वलन तथा मंत्र पाठ से किया गया। कार्यक्रम के इस भाग में पूर्व-प्राथमिक स्कूलों के छात्रों ने बाल-गीत, कविता आदि प्रस्तुत किए। नेमो पूर्व प्राथमिक पाठशाला-फ्लाक, बुबा पूर्व प्राथमिक पाठशाला-मार ला शो, ग्राँ बुआ सम्मेलन सभा हिंदी पाठशाला, नॉर्थलैंड्स पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक पाठशाला के छात्र और अभिभावक इस सम्मेलन में उपस्थित थे।

प्रथम भाग के समापन के बाद विचार गोष्ठी का सत्र आरंभ किया गया। सत्र की अध्यक्षता डी.ए.वी. कॉलेज, रोज बेल की रेक्टर श्रीमती शीला गंगूसिंग ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने भारतीय संस्कृति की महानता पर बल दिया। फिर बारी-बारी से चार वक्ताओं ने विषयानुकूल अपना-अपना आलेख प्रस्तुत किया। विश्व हिंदी सचिवालय की उपमहासचिव डॉ. माधुरी रामधारी ने

'हिंदी से जुड़ी आधुनिक समस्याएँ एवं उनका समाधान' विषय पर आलेख प्रस्तुत किया।

दूसरा आलेख एम.जी.एस.एस. फ्लाक के हिंदी शिक्षक श्री विशाल भोला द्वारा प्रस्तुत किया गया। इनका विषय था-'बैठकाओं का पुनरुत्थाण'। 'प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण' विषय पर श्रीमती तीना जग्गू-मोहेश ने आलेख पढ़ा। मोहेश माध्यमिक सरकारी पाठशाला की हिंदी शिक्षिका है।

तीसरा आलेख मॉरीशस आर्य महिला मंडल की प्रधाना, डॉ. शांति मोहबीर ने प्रस्तुत किया। उनका विषय था-'पूर्व प्राथमिक पाठशालाओं में हिंदी की आवश्यकता'।

आर्य सभा के महासचिव श्री धर्मवीर गंगू, आर्य महिला मंडल की उप प्रधान, श्रीमती यालिनी रघु यालाप्पा, उपमंत्री श्रीमती राजलक्ष्मी रोशनी तथा हिंदू गर्ल्स कॉलिज के शिक्षक श्री राजेश उदय ने मंच-संचालन किया। लगभग पांच सौ हिंदी प्रेमियों ने इस सम्मेलन में अपनी उपस्थिति देकर यह प्रमाणित किया कि वे हिंदी की सुरक्षा हेतु कटिबद्ध हैं।

कमल किशोर गोयनका कृतः गांधी भाषा-लिपि विचार कोश

कृष्ण वीर सिंह सिकरवार

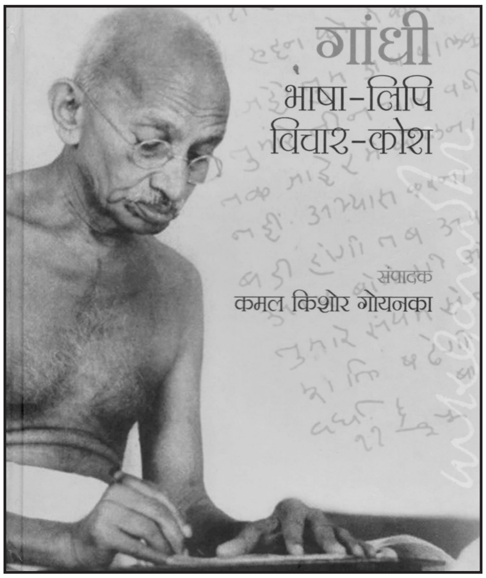

समीक्षित कृति
गांधीः भाषा-लिपि, विचार-कोश
संपादक
डॉ. कमल किशोर गोयनका
प्रकाशक
नेशनल बुक ट्रस्ट
मूल्यः 580 रुपये
प्रकाशन वर्षः 2018

सम्पर्कः आवास क्रमांक एच-3, राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, एयरपोर्ट, बाईपास रोड, गांधी नगर, भोपाल-462033, मोः 9826583363

यह सर्वविदित है कि महात्मा गांधी आधुनिक युग के एक ऐसे शलाका पुरुष है जिनके विचार उनके जाने के कई वर्षों बाद भी लोगों को प्रोत्साहित करते हैं, उनके विचार आज भी आम जनमानस के बीच एक सेतु का कार्य कर रहे हैं। कोई भी नहीं कह सकता कि वे हमारे बीच नहीं है। यह एक सच्चाई है कि उनके ऊपर जितना साहित्य लिखा गया, उतना किसी भी देश में किसी भी साहित्यकार के ऊपर नहीं लिखा गया। आज भी कोई पत्र-पत्रिका उठाकर देख ले कोई न कोई आलेख उनके ऊपर देखने को मिल ही जायेगा। विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से उनको समझने की कोशिश की है। कहा जा सकता है कि आज भी उनके विचार लोगों के दिलों में धड़क रहे हैं। उनके साहित्य को लेकर अनेकों शोध किए जा चुके हैं। अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शोधार्थियों के लिए भी गांधी साहित्य शोध की दृष्टि से महान साहित्य कहा जा सकता है। शोध का यह सिलसिला आज भी निरंतर जारी है।

इन्हीं विद्वान लेखकों में डॉ. कमल किशोर गोयनका किसी परिचय के मोहताज नहीं है, उनकी वर्ष 2008 में नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली से ''गांधीः पत्रकारिता के प्रतिमान'' प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में गांधी के पत्रकार रूप को विस्तार दिया गया था, परंतु उनके विचार व भाषायी सौंदर्य का पक्ष अछूता ही रह गया था। इन्हीं पक्षों को उजागर करती यह पुस्तक अभी हाल ही में नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक से पहले कभी भी इतनी विस्तार पूर्वक गांधी जी के भाषा लिपि व विचार को रेखांकित करती पुस्तक अभी तक देखने में नहीं आयी है। इस पुस्तक को देखने से पता चलता है कि लेखक ने इसको तैयार करने में कितना परिश्रम किया होगा।

प्रस्तुत पुस्तक के संदर्भ में डॉ. गोयनका कहते हैं कि 'प्रेमचंद के मूल्यांकन में प्रगतिशील आलोचकों ने यहाँ तक कि डॉ. रामविलास शर्मा तक ने गांधी की उपेक्षा की थी। गांधी के मेरे अध्ययन से गांधी की उपस्थिति तथा प्रभावों का सही मूल्यांकन हो सका और कालांतर में गांधी की पत्रकारिता पर 'गांधीः पत्रकारिता के प्रतिमान' जैसी पुस्तक की रचना हो सकी। इस तरह प्रेमचंद के बाद गांधी मेरे अध्ययन, अनुसंधान के क्षेत्र के

अंग बन गए और चिंतन के क्षणों में गांधी पर नई-नई योजनाओं के पट खुलते रहे। इसी चिंतन के क्षणों में 'गांधी: भाषा-लिपि विचार-कोश' की रूप रचना हुई। स्वरूप का निर्धारण हुआ और कार्य प्रणाली का निश्चय हुआ।' (भूमिका, पृष्ठ: 6)

प्रस्तुत पुस्तक में गांधी के भाषा-लिपि संबंधी इन विचारों को, जो उन्होंने लगभग आधी शताब्दी तक व्यक्त किए, एकत्र करके इस 'गांधी: भाषा-लिपि विचार-कोश के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गांधी के इन विचारों की विपलुता तथा निरंतरता एक ऐसा वैशिष्ट्य है जो केवल गांधी में मिलता है।

पुस्तक का मूलाधार 'संपूर्ण गांधी वाड्मय' के सौ खंड हैं। इनका प्रकाशन, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार नई दिल्ली ने किया था। इसी वाड्मय से अनुकूल फूल चुनकर तथा प्रतिकूल कांटों को त्यागकर इस पुस्तक को तैयार किया गया है। कोश के विचार अकारांत पद्धति से प्रस्तुत किए गए हैं। इससे पाठकों को एक ही स्थान पर एक विषय विशेष से संबंधित विचार मिल जाएंगे। कोश में कुछ टिप्पणियाँ, खंड आदि के उल्लेख के बिना दी गयी हैं। पाठक यदि उनका खंड जानना चाहें कि वे किस खंड से हैं तो उन्हें संदर्भ ग्रंथ की सूची देखनी होगी, जो पुस्तक के अंत में संकलित की गयी है। इस संदर्भ ग्रंथ सूची को खंड संख्या, खंड की कालावधि एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण) आदि के तहत क्रमबद्ध किया गया है। संदर्भ पुस्तक सूची को देकर लेखक ने इसकी उपादेयता कहीं ज्यादा बढ़ा दी है।

'गांधी: भाषा-लिपि विचार-कोश' गांधी दर्शन के अध्ययन की दृष्टि से एक नया प्रयोग है। आशा है, यह वर्तमान और भावी पीढ़ियों तथा गांधी के अध्येताओं के लिये उपयोगी होगा।

***

लघु कथा

उषा अग्रवाल 'पारस' की दो लघु कथाएं

जवाब

''बेटी आस्तीन वाला सूट पहन लो, अब तुम कॉलेज जाने वाली विद्यार्थी नहीं, एक स्कूल में पढ़ाने वाली टीचर हो। टीचर हमेशा बच्चों के आदर्श होते हैं। जब हम किसी काम (प्रोफेशन) पर जाते हैं ... हमारा रहन-सहन, पहनावा, बोल-चाल, व्यवहार यह सब बहुत मायने रखता है। और टीचर का जॉब एक गरिमामय जिम्मेदारी होती है।''

नर्सरी, के.जी. के बच्चों को एक कान्वेंट में ड्राइंग, क्राफ्ट और डांस सिखाने जा रही बेटी को, जो पढ़ाने के साथ-साथ पार्ट टाइम यह जॉब भी कर रही थी, टोकते हुए माँ ने कहा।

''मम्मी, मैंने तो बिना बाँह का ही सूट पहना है, पर मेरी जो सीनियर टीचर्स हैं वे सिर्फ पट्टियों (स्ट्रीप) वाले ब्लाउज पहन कर आती हैं, जिसमें उनका पूरा गला, पीठ और कंधे सब नजर आते हैं।''

अपने दुपट्टे से बाँहों को ढक, स्कूटी स्टार्ट कर फर्राटे से निकलती बेटी ने 'जवाब' दिया।

***

सम्पर्क: 201, साईं रिजेंसी, रवी नगर चौक, अमरावती रोड, नागपुर-440010

लक्ष्मी के रूप

बाहर के नल से पानी भरकर गगरी कंधे पर उठाए बहू ने अंदर आते समय सामने पड़ी झाड़ू को (गिरने से बचने के लिये) पैर से हटाया तो बरामदे में दीवान पर बैठ चाय पीते पति और सास की ओर उसकी नजरें उठीं। सास ने झट से कहा—''बहू झाड़ू को लात नहीं लगाते, वह घर की लक्ष्मी होती हैं।''

तभी बहू का हाथ अपनी कमर पर चला गया जिसमें कल रात छोटी सी बात पर नाराज हो पति ने अनगिनत लात चलाई थी। बाजू के कमरे में सो रही सास की नींद उसकी चीख और सिसकी सुनकर भी नहीं खुली थी। न ही सुबह उसने उसकी सूजी आँखों का कारण पूछा था।

वह सोचने लगी—एक निर्जीव वस्तु जो सफाई के काम आती है वह लक्ष्मी का रूप है। पर एक सजीव इंसान जो स्वयं गृहलक्ष्मी है, क्या वह उस झाड़ू से भी तुच्छ है?

अचानक उसके कंधे पर रखी गगरी का बोझ और कमर का दर्द दोनों बढ़ गया था।

***

अर्श मलसियानी कृत 'गालिब के पत्र'

अशोक मनोरम

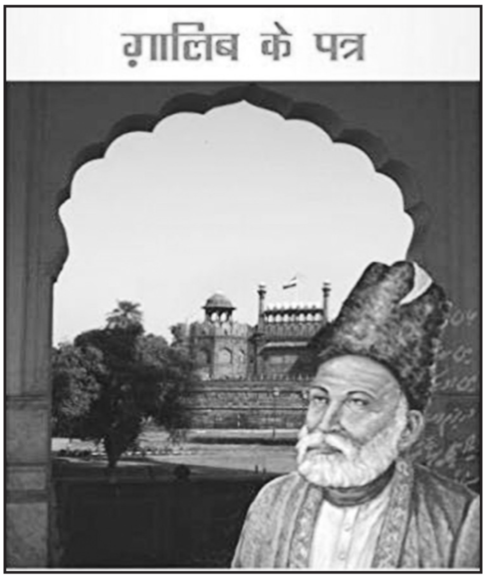

समीक्षित कृति
गालिब के पत्र
लेखक
अर्श मलसियानी
प्रकाशक
प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
मूल्य: 150 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2017

सम्पर्क: आर-जेड-31, ब्लॉक-एक्स, न्यू रौशरपुरा, पपरावट की सड़क रिसाल सिंह मार्ग, नजफगढ़, दिल्ली-110043, मो: 8826967432

खत और उनकी किताबत से मिर्जा ग़ालिब का दोस्ताना संबंध ताजिंदगी रहा। ग़ालिब ने जहां गैर मुस्लिम दोस्तों से यारी हमेशा बरकरार रखी, वहीं वे अपने शार्गिदों को वक्त-वक्त पर सलाह भी देते रहे। दरअसल यह पुस्तक ग़ालिब का जेहनी अक्लमंदी और पुरजोर वकालत के हुनर का दस्तावेज कहा जा सकता है। इस पुस्तक में ग़ालिब के पत्र बड़े रोचक व सरल हैं। इन पत्रों को पढ़ने पर ग़ालिब के व्यक्तित्व, मिजाज और चरित्र पर बड़ी रोशनी पड़ती है। यह तो हर कोई कहता है कि ग़ालिब की शायरी उम्दा है, पर जब उनके पत्रों से लोग रू-ब-रू होते हैं, तो ग़ालिब की शायरी वास्तव में जहन के अंदर रोशनी बिखेरती नजर आती है। इन पत्रों में वह सादगी और सफाई है, जिसके कारण ग़ालिब उर्दू साहित्य में उज्जवल नक्षत्र के रूप में दिखते हैं।

यह ज़माना जानता है कि ग़ालिब उर्दू और फ़ारसी के उम्दा शायर हुए हैं। फ़ारसी की शायरी पर उन्हें बड़ा रश्क था, परंतु यह बात भी दीगर नहीं है कि वह अपनी उर्दू शायरी की बदौलत बहुत मशहूर हुए। 1850 के लगभग उन्होंने उर्दू में पत्र लिखना शुरू किया। उनके शिष्यों और कदरदानों की फेहरिश्त इतनी लंबी थी कि उसी में अपना अधिक समय जाया करते रहे...। ऐसा उनके कई कदरदान आज भी मानते हैं।

शायरों के बीच हमेशा से दोस्ती का समंदर हिलोरे मारता रहा है। हातिम अली मेहर के एक पत्र में ग़ालिब-मिर्जा खुद लिखते हैं-''मैंने मुरासले को मुकालमा बना दिया है।'' सचमुच उनके यहाँ पत्र लिखने का पुराना ढंग नज़र ही नहीं आता। उन पत्रों में मिर्ज़ा एक नई शैली के निर्माता नजर आते हैं। इनकी लेखन-कला में तकल्लुफ़ नाम मात्र की नहीं थी। सीधे-सादे अंदाज में वह अपनी ऊंची नजर, ईमानदारी और रसिकता का सबूत पेश करते रहे। जी चाहता है कि एक-एक पत्र को बार-बार पढ़ा जाए।

तेरह वर्ष की उम्र में मिर्ज़ा की शादी नवाब वख़्श खां मरूफ की बेटी उमरावो बेगम से हुई थी। बड़े ही विचित्र ढंग से इस शादी का जिक्र करते हुए एक पत्र में वे लिखते हैं, ''8 रजब 1212 हिजरी की रोबकारी के वास्ते यहाँ भेजा। 13 बरस हवालात में रहा। 7 रजब 1225 हिजरी को हुक्म-ए-दवाम-ए-हब्स सादिर

हुआ। एक बेड़ी मेरे पांव में डाल दीं। दिल्ली शहर को ज़िन्दान मुकर्रर किया और मुझे इस ''ज़िदां'' में डाल दिया। नज़्म-ओ उम्र को मुशक़्क़त ठहराया।''

एक पत्र का जायज़ा लें-मीर मेहदी ने एक वबा का हाल पूछा तो जवाब में ग़ालिब लिखते हैं-वबा थी कहा, जो में लिखूं कि कब कम है या ज़्यादा। एक 66 वर्ष का मर्द और एक 64 वर्ष की औरत, इन दोनों में से एक मरता तो हम जानते वबा थी।''

एक और ख़त में ग़ालिब लिखते हैं-'वबा में मर तो जाता, पर वबा-ए-आमम में मरना मुझे गंवारा नहीं।' कितने स्वाभिमान की बात है। इस प्रकार का आत्माभिमान तो उनके गद्य और पद्य में बहुत मिलते हैं।

ग़ालिब दरअसल विनोदी और जिंदादिल इंसान थे, जो दूसरों की मुसीबत को अपनी मुसीबत जानते थे। लेकिन ज़माने की मुसीबतों से वह घबराते नहीं थे। वह कभी एक हंसोड़ हमजोली थे, कभी नीरस उपदेशक भी बन जाते थे। मतलब वह ऐसे थे, जैसा एक शायर को होना चाहिए।

ग़ालिब वास्तव में एक नामवर इंसान थे। लोग उनके बोल को बड़बोल समझते थे, पर ज़बान में मिठास और चेहरे पर मुस्कान के साथ सीधे-सीधे बात करने का उनका सलीका ठसक से भरा हुआ लगता था, पर वास्तव में वे अंदर से बच्चे का दिल रखते थे-एक पत्र में लिखते हैं कि दिल्ली शहर में मुझे सब जानते हैं। पत्र के सरनामें पर केवल मेरा नाम लिख दो। मुहल्ला या पता लिखने की जरूरत नहीं। पत्र मुझे पहुंच जाएगा।

पुस्तक-ग़ालिब के पत्र में करीब 35 शायरों-अदीबों के साथ ग़ालिब के ख़तो-किताबत को नज़राना के तौर पर पाठकों के पास परोसा गया है। इस पुस्तक के पढ़ने पर आदमी के दिमाग की बत्ती 'भक्क' से जल उठती है। दरअसल, ग़ालिब जितने बड़े शायर थे, उतने ही बड़े 'आदमी' भी थे। ग़ालिब के शिष्यों की संख्या भी बहुत बड़ी थी, मिर्जा साहब के शिष्यों और दोस्तों के पत्रों का उत्तर देने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। उनकी आयु के अंतिम वर्षों में उनके एक शिष्य चौधरी अब्दुल ग़फुर सुरूर ने उनके बहुत से पत्र एकत्र किए और उनको छापने के लिए ग़ालिब से आज्ञा मांगी। परंतु ग़ालिब इस बात पर सहमत नहीं हुए।

सुरूर के साथ-साथ मुंशी शिवनारायण 'आराम' और मुंशी हरगोपाल तफ़्ता ने भी इसी प्रकार की आज्ञा मांगी। ग़ालिब ने 18 नवंबर 1858 को मुंशी शिवनारायण को लिखा-''उर्दू खुतूत तो आप छपवाना चाहते हैं, यह भी ज़ायज बात हैं कोई पत्र ही ऐसा होगा कि जो मैंने क़लम संभालकर और दिल लगाकर लिखा होगा। वरना सिर्फ़ तहरूर सरअरी है। क्या जरूरत है कि खुलासा यह कि इन रक़्क़ात का छापा मेरे खिलाफ़-ए-तबअ है।''

इस पत्र को पढ़कर शायद मुंशी शिवनारायण और तफ़्ता ने ग़ालिब के पत्रों को छापने का इरादा छोड़ दिया। चौधरी अब्दुल गफ़ूर 'सुरूर' ने ग़ालिब के पत्रों का जो संग्रह किया था उसे मेरठ के एक छापेखाने के मालिक छापना चाहते थे, परंतु चौधरी अब्दुल ग़फ़ूर सुरूर और प्रेस के मालिक शायद इस कारण से रुक गए कि कुछ और पत्र मिल जाएं।

इस पुस्तक की विशेषता तो मरहूम मिर्जा साहब की गद्य लेखन की रवानी और शायर के ज़ज्बे से पाठकों को रू-ब-रू कराना है-

> *मार्च 1859 ई. का एक पत्र हू-ब-हू देखें-*
>
> *मेरी जान,*
>
> *सुनो दास्तान। साहिब कमिश्नर बहादुर देहली, यानि जनाब सांडर्स साहिब बहादुर ने मुझको बुलाया। पंज शंबा 24 फरवरी को मैं गया। साहिब शिकार को सवार हो गए थे। मैं उल्टा फिर आया। जुम्मा 25 फरवरी को मैं गया। मुलाकात हुई, कुरसी दी। बाद पुरसिश-ए-मिज़ाज़ के ख़त अंग्रेजी चार वर्क़ का उठाकर पढ़ते रहे। जब पढ़ चुके तो मुझसे कहा कि ख़त है मंगलोड साहिब हाकिम अकबर सदर बोर्ड पंजाब का। तुम्हारे बाब में लिखते हैं कि इनका हाल दरयाफ़्त करके लिखो, सो हम तुमसे पूछते है कि तुम मलका-ए-मुअज़्ज़मा से ख़िल्लत मांगते हो? हकीकत कही गई। एक काग़ज़ आमिद-ए-विलाकत ले गया था, वह पढ़वा दिया। फिर पूछा कि तुमने किताब कैसी लिखी है। उसकी हक़ीक़त बयान की। कहा-एक मंगलोड साहिब ने देखने को मांगी है, और एक हमको दो। मैंने अर्ज़ किया, कल हाजिर करूंगा। फिर पेंशन का हाल पूछा, वह भी गुज़ारिश किया। अपने घर आया, और खुश आया।...*

मीर सरफ़राज हुसैन को यह ख़त पढ़ा देना और उनको नसीरूद्दीन 'चिराग़ देहली को और मीरन साहिब को दुआ कहना।'

मार्च 1859 ई.

ग़ालिब के सात दोस्त ऐसे थे जो सैयद और शेख़ नहीं थे, हिंदू थे, जिनसे ख़तो–किताबत वर्षों चला–

1. **मुंशी हरगोपाल तफ़्ता**– मुंशी हरगोपाल तफ़्ता सिकंदराबाद के रहने वाले थे। पिता का नाम मोतीलाल था। भटनागर कायस्थ थे। 1799 में पैदा हुए और 1879 में उनकी मौत हुई। बचपन से ही फ़ारसी का शौक था। बंदबस्त के महकमें में कानूनगो रहे। फ़ारसी के बहुत अच्छे कवि थे और ग़ालिब के बहुत चहेते शिष्य। फ़ारसी में बहुत–सी किताबें लिखीं। चार दीवान हैं और किसी में भी 12–13 हजार शेर से कम नहीं। शेख़ सादी की विख्यात पुस्तकों गुलिस्तां और बोस्तां के जवाब में भी पुस्तकें लिखीं।

2. **मुंशी जवाहर सिंह जौहर**– ग़ालिब के मित्र थे, राजा छजमल। जब ग़ालिब कलकत्ता गए तो अपने निजी काम उन्हीं को सौंप गए थे। उनके सुपुत्र मुंशी जवाहर सिंह जौहर ग़ालिब के प्रिय शिष्य थे। उत्तर प्रदेश और पंजाब के अन्य जिलों में तहसीलदार रहे।

3. **मुंशी शिवनारायण**– रायबहादुर मुंशी शिवनारायण आगरा के रहने वाले थे। खानदान के कायस्थ और जाति के माथुर। उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त की और उस जमाने में अंग्रेजी के अध्यापक रहे। सरकार में कई विभागों में उच्चकोटि के कर्मचारी रहे, परंतु आगरा नगर निगम के सचिव हुए तो बहुत नाम पाया। राय बहादुर का ख़िताब मिला और दरबार में कुर्सी मिली। एक स्कूल स्थापित किया। फोटोग्राफी भी जानते थे। अच्छे नक्शानवीश थे। एक छापाखाना भी स्थापित किया। ग़ालिब की दो किताबें दस्तबूं और दीवान–ए–उर्दू यहीं छपी। हिंदी के भी प्रेमी थे। ग़ालिब उन्हें बहुत चाहते थे।

4. **बाबू हरगोविंद सहाय निशात**– पिता का नाम मुंशी खूबलाल था। जाति के माथुर कायस्थ थे। रहने वाले तो पटना के थे, परंतु आगरा आकर बस गए। पहले दिल्ली के सदर आमीन रहे, फिर ग्वालियर चले गए और मीर मुंशी हो गये। कुछ समालोचक तो यहाँ तक कहते हैं कि ग़ालिब यदि फ़ारसी और उर्दू कविता न भी करते तो अपने पत्रों के सहारे ही अमर रहते। उनके फ़ारसी के पत्र पंज आहंग के नाम से छपे हैं, परंतु उन्हें कोई नहीं जानता। उनके उर्दू के पत्र बड़े लोकप्रिय हैं और बार–बार पढ़ने को जी चाहता है।

***

सी–डैक के सॉफ्टवेयर 'लीला' – हिंदी प्रवाह का लोकार्पण

14 सितंबर 2018 को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित हिंदी दिवस के अवसर पर उपराष्ट्रपति, महामहिम श्री वेंकैया नायडू के कर–कमलों द्वारा सी–डैक के सॉफ्टवेयर 'लीला' – हिंदी प्रवाह का लोकार्पण किया गया।

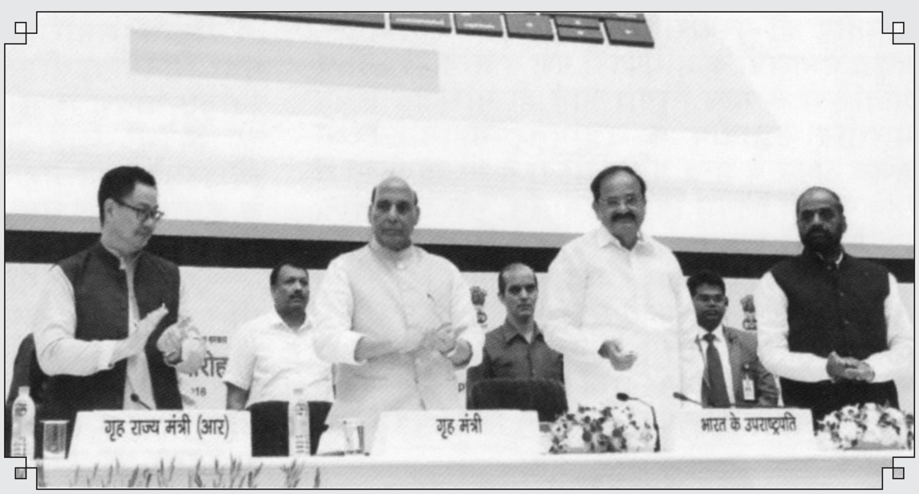

डॉ. धर्मपाल साहिल कृत '... और कितनी?'

डॉ. योगिता महेश शर्मा

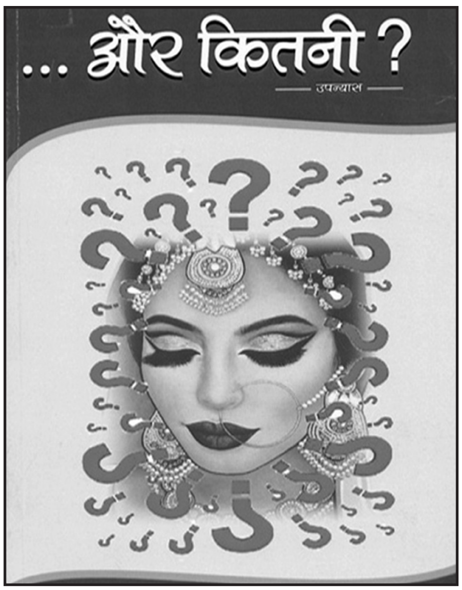

समीक्षित कृति
'... और कितनी?'
लेखक
डॉ. धर्मपाल साहिल
प्रकाशक

मूल्य: 300 रुपये
प्रकाशन वर्ष: ---

हिंदी साहित्य के विकास में पंजाब के लेखकों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। पंजाब अहिंदी भाषी प्रांत होते हुए भी प्रभावशाली व महिमामंडित साहित्यकारों की जन्मभूमि तथा कर्मस्थली है। आलोच्य कृतिकार डॉ. धर्मपाल साहिल ऐसे ही धीमान व्यक्ति हैं जिन्होंने अक्षर-यज्ञ में बढ़-चढ़कर योगदान दिया है। अनुभव मनुष्य को परिपक्व बनाता है और उसकी अनुभूतियों संवेदनाओं में नवीनता भरता जाता है। इस बात की पुष्टि करता है डॉ. साहिल का नया उपन्यास '...और कितनी?' जीवन में बहुत गहरे उतर कर लेखक ने स्वीकारा है कि सुचारू जीवन के लिए अतिशयता त्याज्य है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज को यथासंभव संतुलित व संयमित रखने के लिए कुछ नियम निर्धारित होते हैं जिन्हें प्रत्येक सामाजिक को मानना पड़ता है। यदि पाबंदी या नियमबद्धता न होती तो मानव बर्बर पशु हो गया होता। समाज में उच्चता व मूल्यवत्ता स्थापित करने के लिए इंसान को समझौते भी करने पड़ते हैं और कहीं दम-खम भी लड़ना भी पड़ता है।

इस उपन्यास में एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार की इकलौती सुशिक्षित, सुंदर, सुयोग्य सुपुत्री शिवानी विवाहोपरांत तार-तार हुई जीवन-कथा को आंसुओं में डूबी कलम से बयान किया गया है। नन्ही परी का एक मासूम प्रश्न कि 'मेरे पापा कौन है'? शिवानी को विचलित कर गया। अपनी अबोध बच्ची की जिज्ञासा माँ को झकझोरती है और गत 9-10 वर्षों की तपन-चुभन शिवानी को उसी भयावह अतीत में धकेल देती है जिसे वह कभी भूल न पाई। अपनी नन्ही कली को उसके पिता के बारे में क्या बताएं; यही प्रश्न शिवानी को खाये जा रहा था।

माँ-बाप की लाडली सोन चिरैया शिवानी ने यौवन की दहलीज पर कदम रखा तो 'उपदेश' के रूप में सपनों के राजकुमार ने दस्तक दी। और साथ ही जीवन यथार्थ की मरूभूमि की तपिश में जलना शुरू हो गया। 'उपदेश' जो केवल उपदेश देना, शंका

सम्पर्क: 234, अर्बन इस्टेट, कपूरथला-144601 पंजाब, ई-मेल: mks.mahesh@yahoo.co.in

करना व दहेज मांगना ही जानता था; शिवानी के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न बन गया। अपने अंतर की ऊहापोह, घुटन से तंग शिवानी उपदेश से विवाह न करने का निर्णय लेती फिर एक आयुर्वेदिक डॉक्टर 'कनु' शिवानी के जीवन में नयी उम्मीद बनकर आता है जिससे रिश्ता जोड़कर शिवानी के माता-पिता प्रसन्न होते हैं। अपनी नाजों से पाली लाडली की सगाई पर वे कोई कसर नहीं छोड़ते पर एक बेटी का बाप कुबेर का भंडार कहाँ से लाए? वर पक्ष की सुरसा मुख जैसी क्षुधा शांत होने का नाम ही नहीं लेती। अपने माँ-बाप को सामाजिक कुरीतियों के समक्ष घुटने टेकते देखना। एक बेटी के लिए असहनीय पीड़ा होती है जिसे कृतिकार ने बखूबी वर्णित किया है। प्रथम पर्व में डॉ. साहिल ने वधू पक्ष के सारी वैवाहिक रस्में यथा साहे चिट्ठी, मंगलगीत, सैंत-बरैड़ियाँ, सिर-गुंदी, नानकी छक, कुआर झात व कंडी क्षेत्र की रस्मों तथा गीतों का सुंदर-सटीक चित्रण किया है और इन विलुप्त होती प्रथाओं पर खेद व्यक्त किया है।

अगले अध्यायों में लड़के वालों की अर्थ लिप्सा, दहेज की मांग, लड़की वालों को नीचा दिखाने के हथकंडे, लड़की व उसके परिवार की दयनीय स्थिति का चित्रण अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। माता-पिता के घर से विदा होकर ससुराल पहुंची शिवानी को तीसरी रात से ही जीवन की क्रूर वास्तविकता परायेपन का अहसास, गिरगिट की भांति रंग बदलते रोग व पति की बेरुखी का सामना करना पड़ता है। शिवानी को पत्नी न स्वीकारना, मारना-पीटना, दहेज न मिलने पर प्रताड़ित करना, उसे घर पर छोड़कर दस दिन माँ-चाची के साथ जगन्नाथपुरी की सैर करना, पैसा न देना, सीधे मुँह बात न करना इत्यादि-इत्यादि ये सब एक शिक्षित पति की खूबियाँ थीं। ससुराल में किसी को भी उससे हमदर्दी नहीं थी। सबको खुश रखने की कोशिश करती शिवानी अंदर से टूट चुकी थी जिसकी पुकार सुनने वाला कोई न था वहाँ।

माँ बनने का सुखद समाचार शिवानी को उज्जवल भविष्य के सपने दिखाने लगता है पर उसकी कोख में बेटी है यह सुनते ही ससुरालवाले उसे भ्रूण हत्या करने को विवश करते हैं। न मानने पर पति मार-मार कर उसकी हाल बिगाड़ देते हैं। औरत सब कुछ सह लेती है लेकिन अपनी ममता पर आंच नहीं आने देती, इसलिए शिवानी उन दुराचारियों के आगे डटकर खड़ी रहती है और अपनी पुत्री को जन्म देने का फैसला करती है। शिवानी की जिद्द से चिढ़कर उसका पति अपने ही बच्चे को किसी और का पाप कहता हुआ पत्नी को चरित्रहीन का खिताब देता है और धोखे से शिवानी को उसके मायके छोड़कर वहाँ से रफू-चक्कर हो जाता है। बेटी का घर न टूटे इसलिए माता-पिता हरसंभव कोशिश करते हैं और उनको सुलह का हर दरवाजा बंद मिलता है।

बेटी वालों के लिए कितना मुश्किल था बेटी के हक के लिए लड़ना या तिल-तिल मरना। शिवानी की गर्भावस्था में उसे संभालना, कनु की बेपरवाही सहना, वकीलों की तिकड़मबाजी को झेलना, पुलिस की कार्यवाही व जलालत को सहना, आस-पड़ोस, सगे-संबंधियों की फुसफुसाहट बर्दाश्त करना, नजर नीची-जुबां पर ताला लगाकर समाज का सामना करना ओफ! क्या इसे जीना कहा जा सकता है? अपनी दुधमुँही बच्ची को गोद में उठा एक माँ इंसाफ के लिए धक्के खाती है और सुनवाई कहीं नहीं। शिवानी के पिता, जो एक ईमानदार प्रिंसिपल हैं उन्हें भी अपनी बेटी के साथ खड़े रहने के लिए पचासों इलजामों व विभागीय कार्यवाहियों के जवाब देने को बाधित किया जाता है। उन पर भद्दे आरोप लगाकर उन्हें शर्मसार किया जाता है और कहते हैं सांच को आंच नहीं। हर बार वे बेदाग बच जाते तो उन्हें और परेशान करने के लिए कोई नया मोर्चा खोलने की कोशिश होने लगती।

'कनु' को सुप्रीम कोर्ट से अग्रिम जमानत न मिलने से 8-10 दिन जेल की हवा खाई पर बाहर आते ही शिवानी का जीना दूभर कर दिया। अस्थायी नौकरी, पूरा-पूरा दिन भूख-प्यास से बिलखती बच्ची साथ लेकर कोर्ट कचहरी के चक्कर काटने की विवशता, कॉलेज प्रशासन का दुर्व्यवहार, माँ-बाप की चिंता, अवसादमय जीवन क्या यही सब नारी सशक्तिकरण की परिभाषा है? लड़के वाले तो जुल्म करके भी आजाद थे पर लड़की तथा उसका सारा परिवार इस नारकीय जीवन को जीने के लिए मजबूर था। अपने अधिकारों की रक्षा करना भी गुनाह था। आखिर उस बेचारी का

दोष क्या था? शिवानी जैसी न जाने और कितनी स्त्रियाँ ऐसी ही शारीरिक व मानसिक यातनाएँ झेल रही हैं।

आधुनिक समाज में एक और ज्वलंत समस्या मुँह बाये खड़ी है वह है-विवाहेत्तर प्रेम व काम संबंध। विवाह जैसे पवित्र बंधन में बंधने के बाद भी मतभेद, प्रेमाभाव, कलह, ऊब, असंतुष्टि, विवाह-पूर्व प्रेम या नयेपन की तलाश इत्यादि के कारण विवाहेत्तर प्रेम या काम संबंध स्थापित हो जाया करते हैं। विवाहेत्तर अनैतिक यौन संबंधों से दाम्पत्य जीवन सर्वथा नष्ट हो जाता है। परिवार में अशांति व रिश्तों में अनास्था व्याप्त हो जाती है और जैसा कि 'कनु' और 'शिवानी' के रिश्ते में दिखाई पड़ता है 'कनु' के विवाह पूर्व संबंधों तथा कुसंस्कारों के कारण वह शिवानी के साथ अन्याय करता है। यह चारित्रिक पतन समाज को दिशाहीन कर देगा और परिवारों को तहस-नहस। इस ओर भी उपन्यासकार ने संकेत कर समाज को सचेत करना अपना कर्तव्य समझा है।

मानव मन की अंध-गुह्य परतों में मनोविकृतियाँ पला करती हैं जैसे ही उन्हें अवसर मिलता है वे मानव के चेतन मन पर हावी हो जाती हैं और मानव उनके वशीभूत होकर कार्य करने लगता है। जब ये अस्वस्थ मनोवृत्तियाँ प्रबल हो उठती हैं तो ईर्ष्या, स्पर्द्धा, क्रोध, द्वेष, कुंठा, क्षोभ, अभिमान एवम् अश्लीलता, मानव स्वभाव में परिलक्षित होती है। कनु की माँ इन्हीं मनोविकृतियों के कारण अपने सदाचारी समधी पर 'लज्जा भंग' का आरोप लगा देती है। 'कनु' शिवानी के खिलाफ इन्हीं मनोविकारों के कारण झूठे सबूत और गवाह तैयार करने की फिराक में रहता है और एक झूठे मुकद्मे को जीतने के लिए वकील 'राजन' दुराचार ही हर हद पार कर जाता है।

शब्द 'रिश्वत' भारतीय समाज को 'घुन' की तरह लग गया है। इसके बिना कहीं कोई काम नहीं होता। 'रिश्वत' के पांव न लगें तो सच को सच नहीं माना जाता इस ओर ध्यान दिलाने के लिए भी लेखक प्रयत्नरत है।

स्वतंत्र और सभ्य राष्ट्र की पहचान सुदृढ़ न्याय व्यवस्था से होती है। हमारा संविधान भारतीय मूल्यादर्शों की मुँह बोलती तस्वीर है जिसमें निष्पक्ष न्याय का प्रावधान है। किंतु आधुनिक युग में न्याय तो मात्र संविधान की पुस्तक का श्रृंगार बन कर रह गया है। न्याय मांगने वाला मृत्यु का ग्रास बन चुका होता पर मुकद्दमों की तारीखें समाप्त नहीं होतीं। यह सच है कि जब तक न्यायिक प्रशासन में सुधार नहीं होगा तब तक देश के शासन तंत्र में मजबूती नहीं आएगी। डॉ. साहिल ने भारतीय न्याय व कानून व्यवस्था का संपूर्ण अवगाहन-विश्लेषण किया है। उनके उपन्यास में भारतीय कानून की पेचीदगी व आम आदमी को दरपेश समस्याओं को सफलांकन है। आज न्याय इतना महंगा तथा देरी से मिलता है कि न्याय के लिए आवाज उठाने वाला भीतर तक टूट जाता है जैसा कि शिवानी के हालातों द्वारा लेखक ने दर्शाया है।

मानवीय प्रवृत्ति है कि उसे अकेलेपन से सदैव घबराहट होती है। वह चाहता है कि उसका कोई हमदर्द हो जो उसे सहारा देकर, अपनत्व द्वारा उसकी व्यथा कम कर सके। अकेलेपन के दंभ से मानव टूट कर बिखने लगता है। इसी टूटन की अभिव्यक्ति 'शिवानी' के माध्यम से लेखक ने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की है।

'परी' की बाल सुलभ चेष्टाएँ शिवानी के मन को पुलकित करती है और ननिहाल के सुनसान आंगन को अपनी किलकारियों से, अपनी मुस्कान से, सुकून प्रदान करती हैं। धीरे-धीरे नाना-नानी के प्रेम से पगी परी हालातों को जानना-समझना शुरू करती है। उसके बाल-हृदय में कई सवाल उठते हैं जिन्हें वह माँ से पूछना चाहती है। दरअसल यह प्रश्न प्रत्येक परी समाज से पूछती है कि उसके जैसी और कितनी परियों से समाज यही सुलूक करेगा? और कितनी मासूम बेटियों को इस शापित जीवन का दंश झेलना पड़ेगा? आखिर कब अंत होगा इस संत्रास का?

डॉ. साहिल के उपन्यास का शैल्पिक पक्ष भी सजीव और प्राणवान है। भाषा बोधगम्य, पात्रानुकूल तथा विषयानुरूप है। मुहावरे-लोकोक्तियां पंजाबी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी के शब्दों का बखूबी प्रयोग किया गया है। अंततः डॉ. साहिल का उपन्यास '...और कितनी?' युग सापेक्ष होने के कारण ही साहित्य जगत में अपनी जगह बना सका है। मां वीणा वादिनी इस कलम को और ताकत प्रदान करें।

***

राम और सीता के माध्यम से सांस्कृतिक एकता

शशिप्रभा तिवारी

"भरतनाट्यम नृत्य संघ की कुमुदिनी और गुरू गणेशन ने बताया कि मलेशिया में भारतीय मूल की लड़कियां खासतौर पर भरतनाट्यम बचपन से सीखती हैं। हमारे दल में शामिल नृत्यांगनाएं पिछले दस-पंद्रह सालों से नृत्य सीख रही हैं। ये नृत्य प्रस्तुति के साथ-साथ नृत्य संघ में नए बच्चों को नृत्य सिखाती हैं। दरअसल 'भरतनाट्यम में नव रस का भाव हम कलाकारों को आपस में जोड़े रहता है।"

सम्पर्कः

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का कहना था—'भारतवासी अपने राष्ट्र पर अभिमान करते थे, इसलिए कि उसकी संस्कृति महान थी, वह अध्यात्म की कर्मभूमि थी और देवता वहाँ देह धर कर प्रकट होने के लिए लालायित रहते थे।' यह सच है कि हमारे पौराणिक ग्रंथ और साहित्य में कोई विशिष्ट बात है, तभी तो आज भी विभिन्न देशों के कलाकारों ने अपनी परंपरा और कला के माध्यम से उन धरोहरों को सुरक्षित रखा है। जो केवल आसियान देशों को नहीं जोड़ते, बल्कि विश्व मानवता को जोड़ते है, एकात्म होने का संदेश देते हैं। जहां राम यानी प्रा राम, फ्रा राम व सिरी राम सीता यानि सिदा व नांग सिदा के नाम से सभी को प्रेम, धैर्य और एकता का भी संदेश देते हैं। यही भाव नजर आया चौथे अंतर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव का साक्षी बनकर।

दरअसल, शारदीय नवरात्र से लेकर दीपावली तक उत्तर भारत में रामलीला और मेलों की धूम रहती है। इसी क्रम में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की ओर से चौथे अंतर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव का आयोजन किया गया। इस महोत्सव का उद्घाटन विदेश राज्यमंत्री जनरल वीके सिंह ने किया। इस अवसर पर परिषद की निदेशक रीवा गांगुली और उपनिदेशक पद्मजा भी उपस्थित थे। इस महोत्सव में भारत सहित श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल, मॉरीशस, थाइलैंड के कलाकारों की भागीदारी रही। महोत्सव का मुख्य आकर्षण नेपाल के कलाकारों की जानकी लीला और थाईलैंड के कलाकारों की मारक नृत्य नाटिका रही।

रामायण महोत्सव की शुरुआत श्रीलंका के कलाकारों से हुई। वहाँ के नाट्य कलामंदिर के कलाकारों की प्रस्तुति राम रावण काव्यम थी। उनके अनुसार रावण संहिता के रचनाकार रावण, जो चार वेदों और छह शास्त्रों का ज्ञाता था। उसके द्वारा शिव वंदना के दृश्य से नृत्य प्रस्तुति आरंभ हुई। यह शिव स्तुति थी। यह स्तुति रचना 'नटेशम सुरेशम अनादिम अजेयम' पर आधारित थी। मारीच वध, सीता हरण, जटायु मोक्ष, लंका दहन, राम सेतु निर्माण आदि प्रसंगों को भरतनाट्यम नृत्य के जरिए दर्शाया गया। इस प्रस्तुति के दौरान पृष्ठभूमि को जीवंत करने के लिए डिजिटल फोटो का प्रयोग किया गया। कलाकारों की वेश-भूषा और आभूषण बहुत मनोरम थे।

रामायण महोत्सव की पहली संध्या में बांग्लोदश के धृति नर्तनालय के कलाकारों ने समकालीन नृत्य पेश किया। उन्होंने सीता के माध्यम से औरत के जीवन को समकालीन परिदृश्य में प्रस्तुत किया—सीता के विवाह, वन गमन, रावण के द्वारा अपहरण और फिर अग्नि परीक्षा। सीता की पवित्रता पर पहले राम और इसके बाद जनता ने प्रश्न उठाया। इन्हीं प्रसंगों को कलाकारों ने नृत्य नाटिका में निरूपित किया। प्रस्तुति के समापन में संदेश दिया गया कि आज की सीता कहती है कि उसे अपने सुख-दुख, संपत्ति-विपत्ति में साथ रखोगे, तभी तुम उसकी शक्ति से परिचित हो पाओगे। इस प्रस्तुति में कई रचनाओं-'तबे मानव जन्म कैनो', 'शक्तिस्वरूपिणी जय सीता', 'आमार प्राणेर माझे क्षुधा आछे', जागो नारी अग्नि शिखा' को शामिल किया गया था।

चौथे रामायण महोत्सव की दूसरी संध्या की पहली प्रस्तुति भरतनाट्यम नृत्य संघ के कलाकारों की थी। मलेशिया के इन कलाकारों ने राम-सीता विवाह, कैकेई-मंथरा विवाद, राम वन गमन आदि प्रसंगों को भरतनाट्यम नृत्य के जरिए दर्शाया। नव रस की परिकल्पना के ताने-बाने पर बुनी गई, यह पेशकश तिल्लाने से शुरू हुई। यह राग हमीर कल्याणी और मिश्रण में निबद्ध थी। सीता विवाह प्रसंग को रचना 'सीता कल्याण वैभवम्' व 'राम जय जय राम राम' के माध्यम से चित्रित किया गया। वहीं कैकेई मंथरा संवाद को वायलिन की द्रुत लय पर मोहक अंदाज में पेश किया गया। राम वन गमन के दृश्य के साथ उनके नृत्य का समापन मंगलम से हुआ। इसके लिए मंगलम रचना 'श्रीरामचरितमानस मंगलम' का चयन किया गया था।

भरतनाट्यम नृत्य संघ की कुमुदिनी और गुरू गणेशन ने बताया कि मलेशिया में भारतीय मूल की लड़कियां खासतौर पर भरतनाट्यम बचपन से सीखती हैं। हमारे दल में शामिल नृत्यांगनाएं पिछले दस-पंद्रह सालों से नृत्य सीख रही हैं। ये नृत्य प्रस्तुति के साथ-साथ नृत्य संघ में नए बच्चों को नृत्य सिखाती हैं। दरअसल 'भरतनाट्यम में नव रस का भाव हम कलाकारों को आपस में जोड़े रहता है।

रामायण महोत्सव की दूसरी शाम को नृत्य वाटिका जानकी लीला पेश की गई। इसे नेपाल की मिथिला नाट्यकला परिषद के कलाकारों ने पेश किया। लोकनृत्य, कीर्तनिया, नौटंकी, जट-जटिन, विदापद जैसे लोकविधाओं के प्रयोग से यह प्रस्तुति प्रभावकारी बन गई। रामचरितमानस के दोहे 'सीताराम मनोहर जोड़ी' से प्रस्तुति आरंभ होती है। प्रस्तुति में जानकी जन्म से लेकर जानकी-विवाह के दृश्यों को दर्शाया गया।

मिथिला नाट्य कला परिषद के निदेशक प्रमेश झा बताते हैं कि नेपाल में सीता को पुत्री व बहन के रूप में माना जाता है। विवाह के बाद सीता दुखी रहीं और उनका जीवन त्रासदीपूर्ण रहा, इसलिए वहाँ सीता को विवाह के पश्चात विदा नहीं किया जाता। हमारे देश में कुछ लोग माता जानकी को पुत्री तो कुछ लोग बहन के रूप में पूजते हैं। इसलिए हम पुत्री या बहन को आजीवन दुखी नहीं देख सकते।

इसी पृष्ठभूमि को कलाकारों ने साकार किया। कई मैथिली गीतों-'पानी बिन परल अकाल', 'सुनत क्रंदन इंद्र राजा', 'चहुं ओर मंगल हो', 'सीता जनम भइली धरती मुस्काइल हो', 'अंगने में बाजै बधईया', 'सुनयना रानी गोद खेलावैं', 'धन-धन भाग हमार', 'राजा विदेह के फुलवारी जाओ', 'चंद्रबदन अद्‌भुत किशोरी', 'रघुरैया धनुषिया तोड़ दियो रे', 'चुमावन को ललना धीरे-धीरे', 'सखी बड़ी अचरज देखलौं' के जरिए प्रस्तुति को पिरोया गया। कलाकारों ने मनभावन नृत्य और अभिनय पेश किया। सुनील मलिक और ललित कामत ने सुरीला गायन और संगीत पेश किया। प्रमेश झा ने सूत्रधार की भूमिका को सहजता से निभाया। लोक कलाओं का यह समायोजन मोहक और बेजोड़ था।

रामायण महोत्सव के अंतिम शाम का आरंभ थाईलैंड के मास्क नृत्य वाटिका से हुआ। थाईलैंड की चियांग मई कॉलेज नाट्य कला मंदिर के कलाकारों ने पेश किया। थाईलैंड में प्रा राम को प्रा नाराइ यानि नारायण का अवतार माना जाता है। थाई रामायण के कलाकारों ने सीता हरण और राम रावण युद्ध के प्रसंग को पेश किया। थाई भाषा में राम को फ्रा राम, सीता को नांग सीदा व रावण को थोत्सकान के नाम से जाना जाता है। इस प्रस्तुति में कलाकारों ने मोहक हस्त व पद संचालन करते हुए, प्रसंग को पेश किया। रिकार्डेड म्यूजिक, संवाद और संगीत के जरिए कथा को विस्तार से प्रस्तुत किया। उनके नृत्य में मास्क के जरिए पात्रों को पहचानना सहज था। रावण-मारीच, सीता-रावण, सीता-हनुमान संवाद बहुत ही सुंदर तरीके से चित्रित किया गया। सीता हरण के दौरान अपना दुपट्टा गिरा देती है, जो राम व लक्ष्मण को मिलता है। राम उस दुपट्टे को देखकर विलाप करते हैं। यह वियोग का भाव मर्मस्पर्शी था। इसी दुपट्टे के सहारे राम और लक्ष्मण सीता की खोज में निकलते है। इस प्रयास में उन्हें हनुमान और वानर सेना का सहयोग मिलता है। कलाकारों का आपसी तालमेल, हस्तकों का प्रयोग, पद संचालन बहुत ही संतुलित और सधा हुआ था।

महोत्सव का समापन नृत्य नाटिका 'राम की शक्ति पूजा' से हुआ। यह कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की अमरकृति 'राम की शक्ति पूजा' पर आधारित थी। इसकी परिकल्पना रूपवाणी के धीरेंद्र मोहन ने की थी। इसका निर्देशन और नाट्यलेख व्योमेश शुक्ल ने किया था। वाराणसी के इन कलाकारों ने राम, लक्ष्मण, सीता, रावण और हनुमान जैसे पात्रों के जरिए पेश किया। राम और रावण के बीच युद्ध चल रहा है। युद्धरत राम हताश और निराश हैं। वह हार का अनुभव कर रहे हैं। ऐसे में जामवंत उन्हें देवी की आराधना करने का अनुरोध करते हैं। राम की पूजा से संतुष्ट होकर, देवी विजय होने का आशीष देती हैं।

इस प्रस्तुति को समकालीन नृत्य और अभिनय के जरिए कलाकारों ने रूपायित किया। काव्यांश 'हो रहा दिशा का ज्ञान', 'नयनों का नयनों से', 'फिर हंस रहा अट्टहास रावण', 'माता दशभुजा विश्वज्योति', 'अंतिम क्षण ध्यान में', 'जानकी प्रिया का उद्धार हो न सका', 'धन्य-धन्य राम! होगी जय-होगी जय' आदि के माध्यम से प्रसंग को पेश किया। सीता की अग्नि परीक्षा के दृश्य को नए अंदाज में दिखाया। नृत्य नाटिका के दौरान पंडित जसराज के द्वारा गायी रचना 'हनुमान लला मेरे प्यारे लला' का प्रयोग एक अलग ही प्रभाव छोड़ गया। यह प्रस्तुति कुल मिलाकर अच्छी थी। हालांकि प्रकाश प्रभाव कुछ कमजोर नजर आया।

वास्तव में, एशिया उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक विविधता में राम और रामायण एक सेतु हैं। जिनका जीवन हर किसी को आज भी प्रेरणा देता है। राम का पूरा जीवन कर्मठ, धैर्य, सहनशील, प्रेम, परमार्थ के लिए समर्पित था। यह मानव जीवन का आधार है और हमेशा रहेगा। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के इस प्रयास से देशवासियों को सांस्कृतिक बोध का एक अनुपम सुयोग प्राप्त होता है। इसके लिए परिषद की सराहना करना उचित होगा।

***

अटल जी की याद में ''आजादी के तराने''

संजय भावना

यहाँ हम सब साथ-साथ एवं नव प्रभात जन सेवा संस्थान, दिल्ली द्वारा भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी सभागार में स्व. श्री अटल बिहारी वाजपेयी की स्मृति में 'आजादी के तराने'' व राष्ट्रीय कला/समाज रत्न सम्मान कार्यक्रम का भव्य आयोजन किया गया। कार्यक्रम में देशभर से चुनकर आए चुनिंदा कलाकारों द्वारा देशभक्ति के गीत, नृत्य, अभिनय और संगीत के प्रदर्शन के साथ ही समाज और कला के विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य कर रही प्रतिभाओं, समाज सेवियों/एनजीओ को प्रशंसा पत्र व स्मृति चिन्ह देकर तथा शॉल ओढ़ाकर सम्मानित किया गया। अनेक कलाकारों को नकद राशि से भी सम्मानित किया गया।

यह प्रतिभा प्रदर्शन तथा सम्मान समारोह आईएएस टॉपर सुश्री इरा सिंघल के मुख्य आतिथ्य और सर्वश्री आलोक मिश्रा (आईआरएसस), प्रीति पाल गुप्ता (समाजसेवी), सुंदर सोलंकी (डिप्टी एटीटर इंडिया न्यूज) एवं राजीव नारंग (समाज सेवी) के विशिष्ट आतिथ्य में बेहद खुशनुमा और जोश भरे माहौल में संपन्न हुआ।

श्रीमती भावना शर्मा द्वारा कार्यक्रम की रूपरेखा बताने और सरस्वती के चित्र पर दीप प्रज्वलन के साथ कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। कार्यक्रम की एंकरिंग अपने रोचक अंदाज में इंडिया न्यूज

की एंकर कु. विपनेश माथुर एवं भारत सरकार के प्रथम श्रेणी अधिकारी व कलाकर्मी श्री किशोर श्रीवास्तव ने संयुक्त रूप से किया। और अंत में आभार प्रदर्शन एवं प्रभाव जन सेवा संस्थान की अध्यक्ष श्रीमती सुमन द्विवेदी ने किया।

***

सम्पर्क:

अखिल भारतीय शब्द प्रवाह साहित्य सम्मान

शाश्वत सृजन

लोकभाषाएँ लोकरंजनाओं की ओर ले जाती हैं जो एक नदी की तरह बहकर अपना रास्ता बनाती हैं। जो प्रवाहित होता है वही शुद्ध होता है तथा साहित्य के प्रवाहित होने के लिए भाषा की समस्त धाराओं की ओर जाना होता है। लेखन और सृजन में सृजन महत्वपूर्ण होता है क्योंकि सृजन शाश्वत होता है। यह बात विक्रम विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. राम राजेश मिश्र ने नौवें 'अखिल भारतीय शब्द प्रवाह साहित्य सम्मान समारोह' में अध्यक्षता करते हुए कही।

डॉ. मिश्र ने आगे कहा कि "शब्द प्रवाह का यह आयोजन वर्षों की और वर्षों तक चलने वाली यात्रा है। साहित्य की यही खासियत है कि वह समय के साथ जीता है। तभी वह कालजयी है। लेकिन उसके स्वरूप का समय के साथ बदलना भी जरूरी है। अगर वह समय के साथ नहीं बदल पाता है तो उसका प्रवाह रुक जाता है। सब जानते हैं कि रुकने और ठहरने पर पानी भी सड़ांध मारने लगता है। किसी भी व्यक्ति को घर आंगन के सम्मान को छोटा नहीं मानना चाहिए। व्यक्ति सारी दुनिया में सम्मान प्राप्त कर ले लेकिन जब तक अपने परिवेश के बीच उसका सम्मान नहीं हुआ तब तक उसका सारा सम्मान अधूरा है। अपनों के बीच सम्मान की चाह यहाँ से शुरू होती है। इस दृष्टि से शब्द प्रवाह का यह अखिल भारतीय सम्मान अत्यंत महत्वपूर्ण है।"

मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान में 30 सितंबर, रविवार को आयोजित भव्य सम्मान समारोह में मुख्य वक्ता डॉ. विकास दवे ने कहा कि पाश्चात्य संस्कृति में साहित्य 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' कहा गया है जबकि भारतीय दर्शन के अनुसार साहित्य सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय ही लिखा जाना चाहिए। भारतीय दर्शन में साहित्य रचने को छोटा काम नहीं माना गया है। यह कार्य दुष्कर है इसीलिए इसे साधना और तपस्या का पर्याय माना गया है। पहले के साहित्यकारों की लेखनी में स्याही नहीं खून बहता था। तब वे कालजयी साहित्य रच पाते थे। क्या आज के साहित्यकार ऐसी साधना करते हैं। उन्होंने अपने उद्‌बोधन में सवाल उठाए कि पश्चिम में जो समाज विरोधी जहरीला इंजेक्शन लगाया है उसके स्थान पर क्या हमारा साहित्य परिवार विमर्श पर आधारित नहीं होना चाहिए? विदेशों की नकल करने के बजाय क्या हमें राष्ट्रवादी साहित्य नहीं रचना चाहिए? आज के वैचारिक संकट के दौर में मनुष्य को मनुष्य बनाने वाला साहित्य क्यों नहीं रचा जाता? पंथ में बंटने के बजाय राष्ट्र को एकजुटता में बांधने वाले साहित्य की रचना क्यों नहीं होती?

अतिथि युवा साहित्यकार राजकुमार जैन राजन (चितौड़) ने कहा कि, "साहित्य सृजन किसी भी संस्कृति का अभिन्न अंग माना जाता है। सदियों से हमारे यहाँ साहित्य को आनंददाता ही नहीं ज्ञान का भी प्रकार माना गया है। साहित्य मनुष्य को खंड-खंड में नहीं पूर्णता में दिखाता है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य को जलती हुई मशाल कहा है। ध्यान रखें कि यह मशाल समाज को रोशन करने के साथ ही जला भी सकती है, क्योंकि आज भी बहुत सारा समाज को जलाने वाला साहित्य रचा जा रहा है। साहित्य का ह्रास सांस्कृतिक विकलांगता का प्रतीक है। जिन परिवारों से साहित्य संस्कार लुप्त होते जा रहे हैं वहाँ संस्कारों का लोप होता जा रहा है। आज आवश्यकता अपने अंचल की बोलियों और लोक भाषाओं में साहित्य सृजन कर उन्हें बचाने की है। अगर हम हिंदी भाषा का अस्तित्व बचाना चाहते हैं तो साहित्य की महत्ता समझनी होगी।"

सम्पर्क: शाश्वत सृजन, ए-99, वी.डी. मार्केट, उज्जैन-456006 (म.प्र.), मो: 9926061800, ई-मेल: shashwatsrijan111@gmail.com

शब्द प्रवाह साहित्यिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक मंच उज्जैन के तत्वाधान में अखिल भारतीय पुरस्कार और सम्मान इस समारोह में प्रदान किये गये। ''शब्द साधक'' सम्मान साहित्यकार श्री अरविंद त्रिवेदी सनन को, ''शब्द कला साधक'' सम्मान श्री शरद शर्मा को, समाजसेवा सम्मान श्री राजीव पाहवा को, श्रीमती सरस्वती सिंह स्मृति सम्मान डॉ. विकास दवे (इंदौर) को एवं श्रीमती माया मालवेंद्र बदेका शब्द प्रवाह गौरव सम्मान श्री स्वप्निल शर्मा (मनावर) को प्रदान किया गया।

दिदिया श्री लघुकथा सम्मान श्री कमल चोपड़ा (दिल्ली), डॉ. लक्ष्मीनारायण पांडेय स्मृति सम्मान श्री सीताराम (फिरोजाबाद), स्व. बालशौरि रेड्डी बाल साहित्य सम्मान प्रथम डॉ. सुधा गुप्ता (कटनी), द्वितीय पुरस्कार श्रीमती इंदु पराशर (इंदौर), इंजी. प्रमोद शिरढोणकर बिरहमन स्मृति नई कविता सम्मान सुश्री सरिता गुप्ता (दिल्ली) तथा इंजी. प्रमोद शिरढोणकर स्मृति कहानी सम्मान श्रीमती नीतू मुकुल (जयपुर), स्व. श्रीलक्ष्मीनारायण सोनी स्मृति गजल सम्मान श्री हितेश कुमार शर्मा (बिजनौर) को प्रदान किया गया।

साथ ही मंच द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं पर प्राप्त हुई पुस्तकों में से हिंदी कविता विधा समग्र के क्षेत्र में श्री कारुलला जमड़ा (जावरा) की कृति ''सफर संघर्षों का'', लघुकथा के लिए श्री घनश्याम मैथिल अमृत (भोपाल) की कृति ''एक लौहार'' को व्यंग्य के लिए, डॉ. रवि शर्मा (दिल्ली) की कृति ''अंगूठा छाप हस्ताक्षर'' को प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया।

साहित्यिक/सामाजिक पत्रकारिता के लिए डॉ. देवेंद्र जोशी, राधेश्याम चौरसिया, प्रांजल शर्मा (मंदसौर), महेश सोनी (भोपाल), संपादक रत्न सम्मान प्रदान किया गया। नवोदित कलमकार मनीषा प्रधान (रीवा), रोहिणी तिवारी (कल्याण, मुंबई), सौरभ जैन (तराना) को नयी कलम सम्मान प्रदान किया गया।

आयोजन का शुभारंभ राजेश राज की सरस्वती वंदना से हुआ, स्वागत भाषण कमलेश व्यास कमल ने दिया। अतिथि स्वागत राजेश राजकिरण, भंवरलाल जैन, हरिशकुमार सिंह, अशोक कुमार रक्ताले आदि ने किया। संचालन डॉ. राजेश रावल ने किया। सम्मानितों के परिचय की सधी हुई एंकरिंग शाश्वत सृजन की प्रबंध संपादक अर्पिता जैन ने की। एक निश्चित समयावधि में प्रत्येक सम्मानित साहित्यकार के परिचय को गागर में सागर की तरह समेट कर उन्होंने आकाशवाणी उद्घोषिका की तरह समा बांध दिया। आभार संदीप सृजन ने माना। आयोजन में राजकुमार जैन राजन की कृति 'पेड़ लगाओ' का लोकार्पण भी किया गया। आयोजन में शहर के अनेक प्रबुद्धजन एवं साहित्यकार उपस्थित थे।

***

महात्मा गांधी के जन्म के 150वें वर्ष पर बालकविता संग्रह ''बापू से सीखें'' का विमोचन

डॉ वेद मित्र शुक्ल

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान द्वारा त्रिदिवसीय सांस्कृतिक महोत्सव का आयोजन संस्थान के अखिल भारतीय केंद्रीय भवन के सभागार में 23 से 25 नव. तक आयोजित किया गया। महोत्सव में तीसरे दिन हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी मुख्यअतिथि के रूप में उपस्थित रहे। इस अवसर पर राज्यपाल द्वारा महात्मा गांधी जी के जन्म के 150वें वर्ष पर संस्थान से प्रकाशित बाल साहित्यकार डॉ. वेद मित्र शुक्ल का बाल कविता-संग्रह ''बापू से सीखें'' का विमोचन किया गया। ज्ञात हो कि अगस्त 2017 में साहित्य सृजन पीठ (इंदौर) एवं संस्कृति शिक्षा संस्थान (कुरुक्षेत्र) के संयुक्त तत्वावधान में इंदौर में आयोजित सौद्देश्य बालसाहित्य निर्माण कार्यशाला के दौरान आमंत्रित सौद्देश्य रचित बालसाहित्य में से चयनित कृतियों में से यह एक है।

सम्पर्क: अंग्रेजी विभाग, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - 110015, मोब: 9599798727

इस अवसर पर महामहिम आचार्य देवव्रत ने संस्कृति को किसी भी देश की आत्मा बताते हुए कहा कि भारतीय संस्कृति का आधार धर्म है। यह मनुष्य के व्यवहार में परिलक्षित होना आवश्यक है। इस हेतु एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता होती है। जो ऐसे राष्ट्रभक्त युवाओं का निर्माण कर सके कि वे सभी प्रकार की चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर सकें। विद्या भारती इसी कार्य में प्राण प्रण से समर्पित है। इस संबंध में संस्थान द्वारा महापुरुषों से जुड़े साहित्य का प्रकाशन कार्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है।

इस दौरान उल्लेखनीय कार्य करने वाले संस्थान से जुड़े शिक्षकों और विद्यार्थियों को भी राज्यपाल द्वारा सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में थानेसर से विधायक सुभाष सुधा, संस्थान के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. गोविंद प्रसाद शर्मा, सचिव अवनीश भटनागर, निदेशक डॉ रामेन्द्र सिंह, डॉ ललित बिहारी गोस्वामी, सविता सेठ, विजय कुलकर्णी, कौशलेश उपाध्याय सहित पूरे देश भर से आए हुए शिक्षाविद् व साहित्यकार प्रतिनिधि उपस्थित रहे।

अमरीकन प्याले में भारतीय चाय

हरीश नवल

मेरे घर-आंगन में एक छोटी सी सफेद गोलमेज और चार लोहे की सुंदर कुर्सियां हैं। वहीं से मेरा दिन आरंभ होता है। वहाँ हरीतिमा बरसाते हुए कुछ पौधे हैं और पड़ोस में एक स्कूल है, नन्हें बच्चों के लिए एक स्कूल...

... रोज सुबह जब मैं घूमने के बाद आकर गोल मेज पर तुलसी ग्रीन टी का अमरीकन बड़ा प्याला तैयार कर रहा होता हूँ अक्सर तभी स्कूल में 'प्रार्थना-सत्र' का शुभारंभ हो जाता है। चाय के पीते-पीते मैं उन स्वरों को सुनता हूं जो स्कूल के लाऊडस्पीकरों से गूंजते हुए मेरे कानों में विचरण करने लगते हैं...

...स्वरित शब्दों को यूं तो मैंने कई दशक पूर्व चित्रपट पर सचित्र देखा-सुना था, यदा-कदा सुनता भी रहा, लेकिन जब से यहाँ रहने लगा, लगभग हर सुबह इन्हें सुनता हूँ... फिर सुनता हूँ और इसके भावों को मन में बुनता हूँ। एक आत्मिक उदासपन पल्लवित होने लगता है... वे शब्द हैं इतनी शक्ति हमें दे न दाता/मन का विश्वास कमजोर हो ना/हम चलें नेक रास्ते पे लेकिन/भूल कर भी कोई भूल हो ना।''

...सोचता हूँ कि इतने बरसों से यह 'प्रार्थना-सत्र' असंख्य नागरिकों ने सुना होगा, मेरी तरह ही सुना होगा, स्कूलों, मंदिरों में रोज सुनते होंगे, हो सकता हैं मेरी भांति सोचते भी हों कि क्या 'दाता' ऐसी शक्ति दे सकता है या देता है तो कैसे, क्या करें कि ऐसी अद्भुत 'शक्ति' प्राप्त हो जाए, जिससे मन का विश्वास कभी दुर्बल न हो। मुझ जैसा साधारण व्यक्ति जिसका विश्वास रोज ही डोलता सा है, कैसे उसे बली बनाए... कौन बनाएगा 'दाता' ही न?

सम्पर्क: संपादक, गगनांचल, ई-मेल: harishnaval@gmail.com

दाता यानि प्रभु। प्रभु कौन? सर्वशक्तिमान, निर्णय लेने के सक्षम अधिकारी... दीन को कुलीन और कुलीन को हीन बना सकने वाले विराट-व्यक्तित्व के स्वामी... कहाँ मिलेंगे वे, कैसे शक्ति प्रदान करेंगे?

मनन का सिलसिला बिन दूसरा सिरा मिले तब तक चलता है जब तक ग्रीन टी का अमरीकन प्लाला रिक्त नहीं हो जाता। मानसिक यात्रा अबाध नहीं चलती पर खूब चलती है। 'प्रभु' किसको माना जाए, पौराणिक संदर्भों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के 'प्रभुत्वों' के विषय में सर्वप्रथम विचार-मंथन होने लगता है... ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं, हमें बनाया है-चाहते तो निर्मित करने का बलशाली मन बनाते... अब उनका अपना मन ही कहाँ पक्का था... उन्होंने अपनी पुत्री का ही वरण कर लिया, सोच सकते हैं कितना कच्चा है उनका मन। भगवान विष्णु से निवेदन करूं, वे क्षीरसागर में शेषनाग की गोद में विश्राम कर रहे हैं, थके हुए हैं सृष्टि का पालन करते हुए, साक्षात् लक्ष्मी उनके पैर दबाकर थकान दूर करने का यत्न कर रही हैं... थके हुए प्रभु से कैसे याचना करूं... करोड़ों करोड़ जीवों में मेरा नंबर कब आयेगा, जब आयेगा मेरा जीवन ही जा चुका होगा... क्या शिव के दरबार में अर्जी लगाऊं, वे औघड़ हैं, पहले तो बहुत भोले थे, तुरंत वरदान दे दिया करते थे, लेकिन जब से भस्मासुर के हत्थे से मुश्किल से बचे, सयाने हो गए हैं, धूनी रमाते शिव तपश्चर्या छोड़, मेरे मन का विश्वास सशक्त करेंगे, मुझे संदेह है।

मर्यादा पुरूषोत्तम राम की ओर उन्मुख होऊं लेकिन संदेह की प्रबल छाया यहाँ भी है... ''भूल कर भी मुझसे कोई भूल न हो, इसे राम कैसे सार्थक कर सकेंगे, जिनके मन का विश्वास इतना डगमगाया कि पुनीता सीता की 'अग्नि-परीक्षा' ले... कालांतर में

गर्भवती पत्नी को वन में भटकने के लिए छुड़वा दिया... लीला पुरूषोत्तम कृष्ण से कैसे कहूं, उनके जीवन के कई अंश, दंश देते हैं, वे स्वयं रस छोड़कर सागर में बसी द्वारका में बस गए-अपने मन के विश्वास के टूटने पर...

...मथ रहा हूं, अनेक समकालीन संत, महंत बाबा, पीर, फकीर जिनके 'प्रभुत्व' की गाथाएं सुनता रहा था... चलचित्र की भांति मस्तिष्क में विचरते हैं, साथ ही उनके दुर्बल पक्ष भी दृष्टिगत हो रहे हैं... लाखों, करोड़ों भक्तगण उनके उन पक्षों के साक्षी हो गए हैं... फिर कौन 'दाता'? यह प्रश्न कुंडली मारे खड़ा है। क्या विधान बनाने वाले, राज चलाने वाले, कौन हो सकेंगे 'दाता'? कैसे चलूं नेक रास्ते पर, किससे पूछूं राह? मैं चिंतन के गहरे तालाब में गोता लगाता हूं... 'नेक रास्ता' अर्थात् सच्चाई का रास्ता, ईमानदारी का रास्ता... उस पर चलने के प्रयास में कितने जोखिम हैं, देख चुका हूँ। ईमानदारी से काम करूंगा, मेरी बदली कर दी जायेगी। रिश्वत नहीं दूंगा मेरे काम ठप्प भी हो जायेंगे, विलम्बित हो जायेंगे... खुशामद की नौका पर सवार नहीं होऊंगा तो डुबो दिया जाऊंगा, सत्य का प्रयोग मुझे बरबाद कर सकेगा-समझता हूं, मैंने सही न्याय करने वालों पर बहुधा अन्याय होते देखा है।

...कैसे पाऊंगा नेक रास्ता? अनेक भाव आ आकर बेभाव हो रहे हैं... जिनको शीर्ष पर बिठाया था, वे हमारी ही जड़ें खोदते रहे, उनमें से अनेक के 'नेक' कारनामों से कितनी शर्मिंदगी उठानी पड़ती है वे नहीं जानना चाहते, उन्हें अपने से है, इससे क्या? उनके परदे हटाना, उनके विरुद्ध जाने का अर्थ है-अपने विरुद्ध जाना...

हरी चाय, हरे पौधे मेरे मन में हरियाली नहीं भर पा रहे हैं... प्रार्थना-गीत के स्वर मेरा मंथन कर रहे हैं या मैं उनका... भेद करना कठिन होने लगता है, बुद्ध, महावीर से लेकर विवेकानंद मेरा विवेक जागृत करने हेतु एक सूत्र देते हैं, अपना दीप स्वयं बनो, मुझमें कुछ दीप्त होने लगा है, मुझे अपने विश्वास को सबल बनाने के लिए स्वयं भी 'दाता' बनना होगा, मैं आतंकित होता हूँ-अंतर्मन में झांकता हूँ-देखता हूँ नेकी के तत्व औंधे मुंह गिरे पड़े हैं और बदी के चमक रहे हैं... सत्य कहीं मुंह छिपा रहा है और असत्य का 'बाजार' भी बाजारी हो गया है, जो गर्म है, लीलने हेतु जीभ लपलपा रहा है... मुझे स्वयं ही नेकी को थामना होगा, पर कैसे? क्या मैं बिना बाहरी दाता के ऐसा कर सकूंगा? मुझे स्वयं से युद्धरत होना पड़ेगा, मेरा युद्ध मुझसे ही? बनना होगा स्वयं के उत्थान हेतु 'दाता'... प्रार्थना गीत अब मुझे खुद को इंगित करके गाना होगा, किसी दृश्य, अदृश्य अब से नहीं... कैसे?

मैं सोच में डूबता हूं, तभी जीवनसंगिनी हमारे बेटे का बस्ता गोल मेज पर रखते हुए आदेश देती है, ''सुनो, मुन्नू को स्कूल बस तक छोड़ आओ।'' ''अभी से'' मेरा कमजोर सा प्रतिवादी स्वर निकलता है। उत्तर आता है, ''अरे, तुमने आज इसका होमवर्क पूरा नहीं किया, पहले कम्पलीट कर दो, फिर छोड़ आना।''

'प्रार्थना-गीत' से कहीं अधिक प्रभावी हो जाता है पत्नी का कथन... मैं मन में पनपते विश्वास को झटक कर मुन्नू का होमवर्क पूर्ण करने की सोचता हूँ...

मेरे भारतीय चिंतन तत्व बिखर जाते हैं और मन कर रहा है कि ग्रीन टी का एक अमेरिकन प्याला और मिल जाए तो विश्वासपूर्वक भारतीय होमवर्क सही-सही कम्पलीट कर सकूंगा।

***

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

....
....
....
....

पत्रिका भिजवाने का पता

....
....
....
....

विवरण	शुल्क				प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.................	एक वर्ष	₹ US$	500 100	(भारत) (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹ US$	1200 250	(भारत) (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय पुस्तक विक्रेता		10% 25%			

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.. दिनांक ....

रु./US$ .... बैंक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं:
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....

नाम..

पद..

दिनांक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 40 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698	वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
महानिदेशक	:	23378103 23370471	भारतीय सांस्कृतिक केंद्र अनुभाग	:	23379274
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228 23378662	अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति अनुभाग-1	:	23370391
			अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति अनुभाग-2	:	23370234
उप-महानिदेशक (पी)	:	23370784	अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति (अफगान अनुभाग)	:	23379371
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386			
प्रशासन अनुभाग	:	23370834	हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3358, 3347
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849			

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

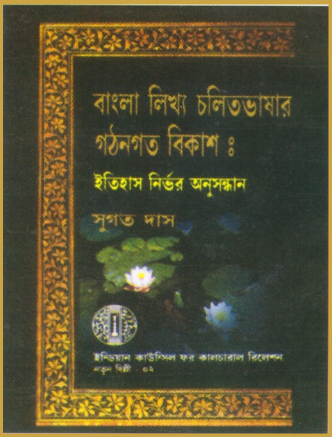

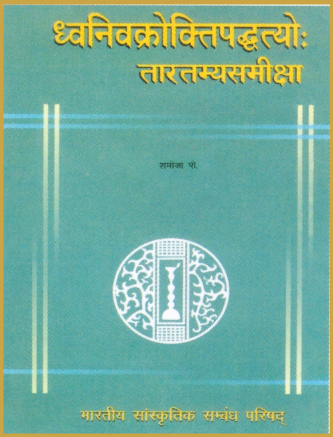

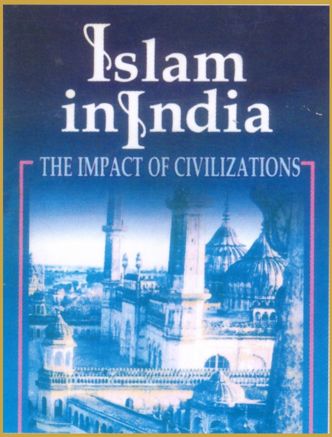

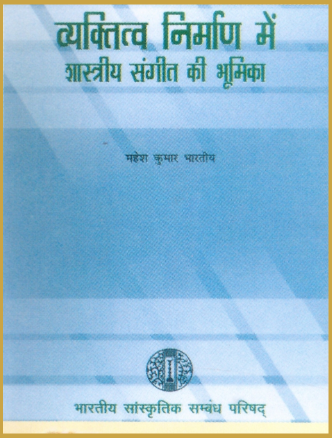

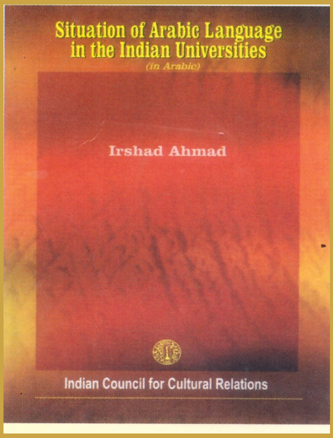

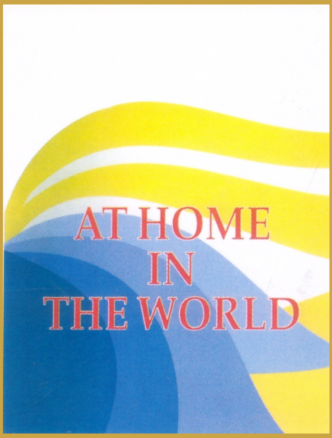

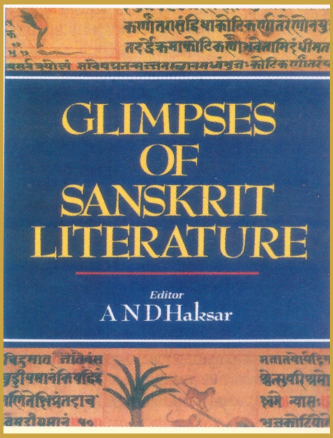

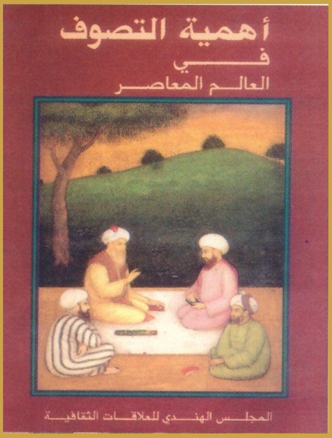

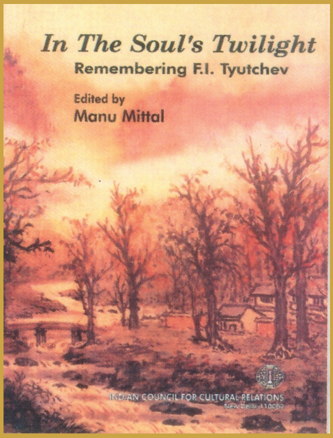

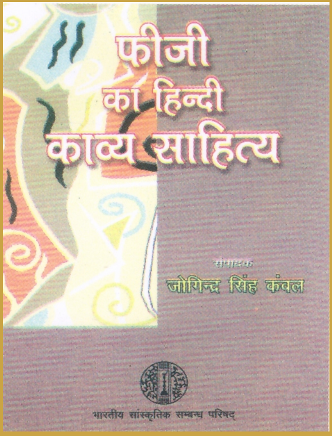

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in